भूमिका ।

इस पुस्तक का अभिप्राय जापानी क़ौम के प्रति घृणा या विरोध पैदा करना कदापि नहीं है, क्योंकि और देशों की तरह जापान में भी करोड़ों ऐसे लोग हैं जो लड़ाई से अलग रहकर शान्तिमय जीवन व्यतीत करना चाहते हैं। इस किताब में तो जापान के शासकों की काली करतूतों का वर्णन किया गया है और यह दिखाया गया है कि जापान का फ़ौजी शासक वर्ग किस प्रकार दुनिया में मारकाट और तबाही फैलाने के लिये कटिबद्ध है, और उसने किस प्रकार अपने ही देशवासियों को औपनिवेशिक ग़ुलामों से भी बुरी अवस्था में रख छोड़ा है। जापान में करोड़ों ऐसे किसान, मज़दूर और मध्यम श्रेणी के लोग हैं जिन्हें न तो कोई राजनैतिक अधिकार प्राप्त है और न जिन्हें पेट भर खाना ही मिलता है।

जापान के फ़ौजी शासक फ़ेसिज़्म जैसे ज़हरीले सिद्धान्त को अपना आदर्श मान कर तलवार के बल से समस्त एशिया ही नहीं बल्कि सारे संसार को पराजित करना चाहते हैं। इसीलिये उन्होंने अपने देश के सारे औद्योगिक साधनों को लड़ाई का सामान तैयार करने में लगा दिया है, और जापानियों को झूठे जातीय अन्धविश्वास के गढ़े में डाल रखा है, ताकि वे अपने को सर्वोच्च श्रेणी की सृष्टि समझकर 'हीन जातियों' को पराजित कर उनके शोषण द्वारा मालामाल होने की उम्माद में जंग का समर्थन करते रहें। जापानी जनता को इस प्रकार फ़ौजी प्रोपगैंडा तथा झूठी आशाओं के जाल में फँसाकर उन्नतिशील विचारों से दूर रखा जाता है। यही ख़ास कारण है कि जापान में सामाजिक उन्नति ख़त्म सी हो गई है और जापानी एक भद्दे जातीय गौरव की आड़ लेकर अन्य देशवासियों के घरों को लूटने, उनकी स्त्रियों को बेइज्ज़त करने, तथा उनको और उनके बच्चों को क़त्ल करने में अपना गौरव समझते हैं।

यह तो प्रत्यक्ष है कि कोई भी साम्राज्यवादी शक्ति एक गुलाम देश को आज़ाद करने के लिये अपना सर्वस्व खोने को कभी भी नहीं तैयार हो सकती। जो जापान आज चीन को साम्राज्यवादी दासता में जकड़ना चाहता है; जिस जापान ने कोरिया, मंचूरिया, आदि की आज़ादी को कुचल डाला है; जो

जापान आज मलाया और बरमा को जीतकर साम्राज्य विस्तार में लगा हुआ है, वह किस प्रकार हमारे देश की आज़ादी का रक्षक बन सकता है ? क्या जापान ने अपनी फ़ौजी ताक़त और साम्राज्य का निर्माण केवल इसलिये किया है कि वह अपने 'धार्मिक गुरु' भारतवर्ष की आज़ादी के लिये मर मिटे ?

यह सोचना कि जापान हमें आज़ाद कर देगा नितान्त भूल है आजादी तो हमें केवल अपने बल पर मिलेगी न कि एक खूँख़ार फ़ैसिस्ट देश की जीत से। जापान की विजय से तो हमारी पराधीनता की ही जंजीरें मज़बूत होंगी, हम अपने देश में फ़ैसिस्ट शासन द्वारा तबाही और बरबादी के अन्यथा और कुछ न देख सकेंगे; और 'कुइस्ला' कहला कर, निन्दनीय जातीयता के गर्व से चूर, हम एक विदेशी फ़ौजी ताक़त के जुल्मों के शिकार बनेंगे।

टोजो का जापान, हिटलर के जर्मनी के साथ सारे संसार की आज़ादी के लिए एक बहुत बड़ा ख़तरा बन गया है। इसलिए आज हमारा राजनैतिक कर्तव्य है कि हम, एक आज़ादीपसन्द राष्ट्र की हैसियत से, हर तरह से फ़ैसिस्ट शक्तियों की हार में हाथ बटायें, पर इसका अर्थ यह नहीं है कि हम अपनी आज़ादी के प्रश्न को ही भूल जायँ। हमें तो फैसिस्टों की हार में पूरी शक्ति लगाते हुये अपनी भी आज़ादी हासिल करना है, जिनका एकमात्र उपाय देश में राष्ट्रीय एका क़ायम करना है।

राष्ट्रीय एके अथवा कांग्रेस और मुस्लिम लीग में समझौते द्वारा ही आज हम देश में वह शक्ति पैदा कर सकते हैं जिसके सामने विदेशी साम्राज्यशाही को हमारी माँगों के सामने झुकना पड़ेगा और देश में एक राष्ट्रीय सरकार क़ायम हो सकेगी, जोकि स्वतन्त्रता का पथप्रदर्शन कराती हुई हममें शक्ति और उत्साह का संचार करेगी और जिसके सामने जापान हमारे देश पर हमला करने की हिम्मत भी न कर सकेगा ! अन्त में हमारी ताक़त जापानी या जर्मन फ़ैसिज़्म को ख़त्म करने में एक महत्त्वपूर्ण वस्तु ही न बनेगी बल्कि हमें विदेशी शासन के पंजे से भी मुक्त करेगी।

सूची

१

जापान के आज़ादी दिलाने के वायदे।

क्या ये वायदे सच्चे हैं?

इस वर्तमान युद्ध के कारण हमारे देश में एक विषम परिस्थिति उत्पन्न हो गई है और उसकी विषमता उस समय से और भी बढ़ गई है जब से जापान इस लड़ाई में शामिल हो गया है। अभी हमारे देश पर शत्रुओं का सशस्त्र आक्रमण भले ही न हुआ हो, लेकिन उनके प्रचार का हमला हमारे यहाँ युद्ध के पहले ही शुरू हो गया है, जिसका नतीजा यह हुआ है कि आज हममें से बहुत से लोग इस पर विश्वास करने लगे हैं कि हमारे देश में आज़ादी की किरणें जापान से आवेंगी।

इससे पहले कि हम जापानी प्रचार के शिकार हो जावें हमें ठंढे दिल से उनकी बातों पर ग़ौर करना चाहिए। हमें उनके वादों के

जाल में यूँही न फँस जाना चाहिए बल्कि उसका भली भाँति विश्लेषण करके देखना चाहिए कि क्या ये वायदे सच्चे हैं !

लड़ाई से पहले तो जापान ने हमारे राजनैतिक झगड़ों से कोई सरोकार नहीं रखा। यहाँ की सियासी हालत को सुधारने के लिए उसने कभी भी कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई लेकिन आज जब हम टोकियो, सेगान या सिंगापुर का रेडियो ब्राडकास्ट सुनते हैं तो कान को बहरा कर देनेवाली आवाज़ हमें बताती है कि जापान भारत को आज़ाद करने के लिए बेचैन है। लेकिन क्या हम नहीं जानते कि औरों की भाँति जापान भी एक ख़ूँख्वार साम्राज्यवादी ताक़त है—फिर क्या वजह है कि वह आज हमको बरबाद करने की जगह आज़ाद करने के लिए परेशान है।

लेकिन हमको आज़ाद करने की इस बेचैनी और परेशानी की पोल उसी समय खुल जाती है जब हम जापान की वैदेशिक नीति की ओर देखते हैं। उसकी नीति से उसकी आकांक्षा और उस आकांक्षा से हम उसके वायदों की असलियत का अनुमान कर सकते हैं।

प्रसिद्ध टनाका मेमोरियल जापान की वैदेशिक पालिसी का मुख्य अंग है। यद्यपि यह मेमोरियल एक पुरानी वस्तु हो गई है लेकिन उसकी ख्याति कुछ कम नहीं हुई है। टनाका मेमोरियल जापान की वैदेशिक पालिसी के बारे में कहता है:

'चीन पर विजय पाने के लिए हमको पहले मंचूरिया और मंगोलिया को जीतना चाहिए और विश्व-विजय के लिए चीन को पराजित करना आवश्यक है .... । सम्राट् माइजी यही योजना हमारे लिए छोड़ गए हैं। चीन के सारे साधनों को अपने अधीन करने

के बाद हम क्रमशः भारत, दक्षिणी समुद्र, मध्य-एशिया, एशिया माइनर और अन्त में योरोप को जीत लेंगे।'

ऊपर के बयान के मुताबिक जापान ने मन्चूरिया पर तो अपना आधिपत्य जमा लिया है, लेकिन उसकी योजना का दूसरा भाग सफल न हो सका। चीन को एक ही झपेटे में ख़त्म कर देने की प्रबल इच्छा रखते हुए भी जापान वहाँ बुरी तरह फँस गया है और अब उसे विजय के स्थान पर पराजय और लांछन का सामना करना पड़ रहा है। यदि वह चीन को हराने में समर्थ हो जाता तो उसका दूसरा आक्रमण हमारे देश पर होता, जैसा कि हम उसके विजय-लिप्सा के कार्यक्रम में देख चुके हैं। और यह आक्रमण हमको आज़ादी दिलाने के लिए नहीं बल्कि हमको सदा के लिए गुलाम बनाकर हमारे साधनों की सहायता से विश्व-विजय की आकांक्षा को पूरी करने के लिए होता!

ऐसे जापानी घोषणाओं की कमी नहीं है जिनसे हम उनके लूट के इरादों को समझ न सकें। वहाँ के प्रसिद्ध व्यक्ति जनरल अराकी अपने देश के इरादों को बिना किसी प्रकार छिपाए हुए इस तरह व्यक्त करते हैं:

'सारे संसार को विजय करके विश्व भर को अपने अधीन बनाना हमारे देश की परंपरागत नीति है। यदि किसी दूसरी शक्ति की कोई कार्यवाही हमारे इस उद्देश्य में बाधक होती है तो हमारा प्रहार उस शक्ति पर अवश्य होगा, क्योंकि हमारी साम्राज्यवादी नीति का ही प्रचार सारे संसार में होना चाहिए।'

मंचूरिया पर आक्रमण करने से ६ सप्ताह पहले जेनरल हांडो ने, जो उस समय उत्तरी मंचूरिया में जापानी फ़ौजी कमाण्डर था, अपने

टोकियो के आका को इस प्रकार लिखा था : "अमेरिका के ख़िलाफ़ लड़ाई छेड़ने से पहले हमारी फ़ौजों को चाहिए कि वे सोवियट यूनियन के सुदूर पूर्व के प्रान्तों पर अपना अधिकार जमा लें।"

आज़ादी दिलानेवाला।

इन घोषणाओं के अतिरिक्त एक नहीं सैकड़ों बातें ऐसी हैं जो जापान के साम्राज्यवादी इरादों को प्रकट करती हैं। लेकिन सबसे मुख्य तो हम लोगों को आज़ाद करनेवाली उनकी वह घोषणा है जो रात दिन हमको प्रायः सभी जापानी रेडियो स्टेशनों से सुनाई जाती है।

पर क्या इस प्रकार के शुभचिंतकों की मीठी किन्तु भुलावे में डालनेवाली बातें हमने पहले नहीं सुनीं ? हम लोग इस प्रकार की धूर्तता की बातें सुनने के आदी हो गये हैं। हिटलर आज एक ओर तो करोड़ों बेक़सूर आदमियों और लाखों मासूम बच्चों का ख़ून बहा रहा है, पर दूसरी ओर वह अपने को योरोप की संस्कृति का रक्षक बनने का ढोंग करता है। अभी कल ही की तो बात है जब हिटलर का भाई, फ्रैंको, स्पेन में इसी प्रकार की ख़ून की होली खेल चुका है; और इन सबमें कायर किंतु ढोंगी मुसोलिनी अबीसीनिया में लाखों को मौत के घाट उतारकर अन्त तक अपने को "इस्लाम का रक्षक" कहने से बाज़ नहीं आता था। फिर इस तरह की बातें करने में जापानी ही किसी से पीछे क्यों रहें ? हर मामले में नक़्क़ाली के लिए प्रसिद्ध जापानी, झूठे वायदों की भी नक़ल क्यों न करें ? जब वे जानते हैं कि इन वायदों में असलियत कुछ भी नहीं है तो रोज़ रेडियो पर उन्हें दुहराने में उनका क्या जाता है, और 'एशिया एशियाइयों के

लिए' वाले नारे का प्रचार करके हिन्दुस्तानियों को अपने जाल में फँसाने में उनको क्या दिक़्क़त पड़ती है?

पर जापान के ये वायदे, वायदे के अलावा और कुछ नहीं होते, और जापान मौक़ा आने पर अपने वायदों के ख़िलाफ़ ही करता है। 'एशिया एशियाइयों के लिए' के सिद्धान्त का क्या अर्थ रह जाता है जब हम जापानियों के आधीन एक नहीं अनेकों एशियाई देशों को ग़ुलाम से भी बदतर हालत में देखते हैं! उसकी फ़ौजी हुकूमत ने करोड़ों एशियाइयों की स्वतंत्रता को अपने पैरों तले कुचल डाला है और उसके अत्याचारों को देखकर शैतान भी शर्म से सर झुका लेता है।

जापान के बारे में, मैं मानता हूँ, मेरा निजी अनुभव नहीं है और न मैंने उस देश का भ्रमण ही किया है पर इतना तो प्रत्यक्ष ही है कि क़ोई भी साम्राज्यवादी शक्ति, भले ही और कुछ हो जावे, दूसरे देश को आज़ादी दिलानेवाली नहीं हो सकती।

यहाँ नीचे दो-चार प्रश्न दिये जा रहे हैं जिनसे फ़ौजी जापान के वायदों की सत्यता का पता लग जावेगा। हमारे पास इन प्रश्नों का टोकियो से उत्तर पाने का कोई साधन नहीं है, इससे हमें इनके उत्तर स्वयं ही तलाशने चाहिए।

१—दूसरे देशों को हड़पनेवाला जापान अपने विजयक्रम को निःस्वार्थ कैसे कहता है?

२—क्या जापान ने अपने देश के करोड़ों लोगों को लूटखसोट, दोहन और राजनैतिक दासता से मुक्त कर दिया है?

३—जापान अपने जीते हुए देशों में किस तरह शासन चलाता

है और वहाँ के निवासियों की किस मानी में उन्नति हुई है !

४—जापान हमको सहायता देने के लिए आज इतना उतावला क्यों है और बिना बुलाये ही आज वह हमको बचाने के लिए क्यों आना चाहता है !

प्रचार।

इससे पहले कि हम और आगे जावें हमें जापानी प्रोपगैन्डा के बारे में कुछ बातें बताना ज़रूरी जान पड़ता है। जहाँ तक प्रोपगैन्डा या प्रचार का सवाल है हम उसे बुरा नहीं कह सकते, क्योंकि प्रचार वास्तव में अपने ख्यालात और उसूलों के फैलाने का एक ज़ोरदार साधन है। लेकिन एकदम सफ़ेद झूठ बोलना, झूठी बातों को फैलाना, धोखा देना और दूसरे लोगों की आँखों में धूल झोंकना निस्संदेह निन्दित कहा जावेगा। इस तरह के झूठे प्रचार का आधार झूठ और मक्कारी की बातों पर होता है, जिसमें तर्क-वितर्क और असलियत की ज़्यादा गुंजायश नहीं रहती।

लड़ाई शुरू होने से पहले जर्मनी ने कई बार इस बात को घोषणा की थी कि दूसरे देशों को हथियाने की उसकी इच्छा कभी नहीं है। उसने कहा था कि वह केवल आस्ट्रिया ही से संतुष्ट हो जावेगा, लेकिन जैसे ही नाज़ियों ने युद्ध की पूरी तैयारी कर ली उन्होंने दूसरे देशों पर बड़े पैमाने पर आक्रमण करना शुरू कर दिया। सब वायदे और आश्वासन धरे के धरे रह गये। पर छोटे छोटे देशों को जीतने के बाद जर्मनी का दिमाग़ ही फिर गया और वह विश्व-विजय का सपना देखने लगा।

ठीक इसी तरह मलाया, फ़िलीपाइन और बर्मावालों को पहले जापानी रेडियो से आज़ादी के संदेश सुनाये जाते थे, लेकिन इन देशों के पराजित होने तथा जापान के पंजे में पड़ जाने के बाद अब ये मीठे वायदे उन्हें सुनने को नहीं मिलते। जैसे ही वे जापानियों के अधीन हुए उन्हें स्पष्ट तौर पर जापानी औपनिवेशिक पालिसी के बारे में बता दिया गया और अब उन्हें मालूम हो गया है कि वे पहले की ही तरह आज भी ग़ुलाम हैं। बर्मा-विजय को जापानी कम महत्त्व नहीं देते क्योंकि इस विजय के कारण उनकी मुहताजी बहुत कुछ दूर हो गई है और वे अपने पैरों खड़े होने में बहुत कुछ समर्थ हो गये हैं। फिर ऐसे महत्त्वपूर्ण देश को एक साम्राज्यवादी देश के द्वारा आज़ादी मिलना एकदम असंभव बात जान पड़ती है। उसे तो ऐसी परिस्थिति में जो मिलना चाहिए था वही मिला। सारे बर्मा की हुकूमत बिना किसी शर्त के जापानी कमान्डर-इन-चीफ़ को दे दी गई है और वहाँ की कठपुतली सरकार को जापानी फ़ौजी हुकूमत की सहायता करते हुए काम करने का हुक्म दिया गया है। क्या यह ताज़ी मिसाल हमारे देशवासियों की आँखें खोलने के लिए काफ़ी नहीं है? और क्या जापानी रेडियो के आज़ादी के वायदे हम जापानियों के ग़ुलाम हो जाने पर भी सुन सकेंगे?

वैसे तो सभी साम्राज्यवादी अपने उपनिवेश के निवासियों के साथ ज़ुल्म करते हैं पर इस मामले में फासिस्ट मुल्क औरों से कहीं आगे बढ़े हुए हैं। अपने उपनिवेशों की जनता के प्रति वे और साम्राज्यवादी शक्तियों से ज़्यादा ही क्रूर हैं। वे सदैव यह प्रयत्न करते हैं कि अपने अधिकृत देश की सारी कला कौशल को अपने हाथ में ले लें और

पराजित देश उनके लिए कच्चा माल और खेती की उपज पहुँचाने के गोदाम भर बने रहें। यह बात जापान की नवीन आर्थिक नीति के अध्ययन से स्पष्ट हो जाती है जिसके अनुसार वह अपने देश में केवल चालीस फ़ीसदी लोगों को खेती बारी में लगावेगा, और उसके उपनिवेशों या आधीन देशों में ८० से ९० फ़ीसदी तक लोग खेती का काम करेंगे।

पश्चिमी हुकूमत की एक मुद्दत से गुलामी करते-करते मलाया, बरमा, आदि के निवासी ऊब गए थे। शासकों का जातीय घमंड और उनकी लूट-खसोट इनके लिए धीरे-धीरे असह्य हो गई थी और यही कारण है कि जापानियों को अपने प्रोपैगैन्डा के जाल में इन्हें फँसाने में देर न लगी। जब अँग्रेज़, डच और अमेरिकन साम्राज्यवादी अपनी राज्यसत्ता की कोरी शान में मलाया, जावा, फिलीपाइन और बरमा की जनता से अलग ही अलग रहे, जापानियों ने अपने हज़ारों एजेन्टों से इन देशों को भर दिया। इन लोगों ने पाँचवें दस्ते की कार्रवाई के अनेकों केन्द्र इन सभी स्थानों में क़ायम कर लिए। दूसरी ओर पश्चिमी हाकिमों की सामाजिक और राजनैतिक अलहदगी इस सीमा तक पहुँच गई थी कि उन्हें अन्त तक बढ़ते हुए जापानी ख़तरे की छाया तक न दीख पड़ी। अन्त में जब जापानी आक्रमण शुरू हुआ तो उन्होंने सब कुछ खोकर भी जनता के प्रति अविश्वास करने की अपनी परम्परागत प्रथा को नहीं छोड़ा। मलाया और बरमा के देशभक्तों से इन विदेशी हुक्मरानों ने फ़ासिज़्म से अपने देश की रक्षा करने की कोई अपील तक न की—न तो देशभर में छापामार सिपाहियों का ही संगठन किया गया और न जनता को अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित ही किया गया।

ख़तरे से होशियार !

जापानियों ने, अन्य फ़ासिस्ट शक्तियों की भाँति, अस्त्र शस्त्र से भी अधिक अपने प्रोपगैंडे का सहारा लिया है। उन्होंने आक्रमण करने से पहले बड़ी-बड़ी सामाज्यशाही शक्तियों के आधीन देशों को, अपना असली इरादा न बता कर, केवल विदेशी शासकों के ज़ुल्मों को बढ़ाचढ़ा कर बताना शुरू किया, जिससे इन देशों में बग़ावत की आग फैल जावे। यह सब इस लिए नहीं कि इन देशों को आज़ादी मिले, बल्कि इसलिए कि उनमें बग़ावत फैलने से जापानियों के आक्रमण का रास्ता साफ़ हो जावे।

यह सब होते हुए भी इस बात से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि जापानी प्रोपैगैन्डा अपने उद्देश्य में बहुत कुछ सफल रहा। हमारे देश के बहुत से लोग जो अपने को विदेशी साम्राज्य-वाद की ज़ंजीरों में क़ैद पाते हैं जापान की इन चिकनी-चुपड़ी बातों को बड़े चाव से सुनते हैं और जापान को अपना उद्धारक समझते हैं।

यहाँ यह बता देना ज़रूरी है कि हमारे देश में विदेशी शासन के जुल्मों की कमी नहीं है और न हम उसके लूट खसोट से कभी इन्कार कर सकते हैं। लेकिन जब हम इस प्रकार की बातें एक ऐसे मुल्क के मुँह से सुनते हैं जो वास्तव में इन विदेशियों से कम लुटेरा नहीं है तो हमको उसके झूठे प्रचार की असलियत मालूम हो जाती है। इस प्रकार हम स्पष्ट रूप में यह देख सकते हैं कि जापानियों का एशियावालों को आज़ादी दिलाने का ढोंग रचना, दूसरे मुल्कों

को अपने चंगुल में फँसाने की तरकीब के अलावा और कुछ नहीं है।

साधारण परिस्थिति में हमारे देश में जापान के इस प्रकार के सत्य प्रतीत होनेवाले झूठे प्रचार का कुछ असर न होता क्योंकि हमारी राष्ट्रीय भावना सब तरह से फासिस्टवाद, फ़ौजी सिद्धान्तों और क़त्लेआम की नीति की विरोधी है। लेकिन मौजूदा ब्रिटिश सरकार की ग़लत पालिसी, जो दमन और जनता के प्रति अविश्वास पर निर्भर है, फ़ासिस्ट प्रोपगैन्डा को हमारे देश में काफ़ी सुदृढ़ बनाने में सहायक हुई है। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या हम विदेशी सरकार की ग़लत नीति के शिकार हो जावें और भावुकता के बहाव में अपने को इतनी दूर तक बहने दें कि हमारा नामोनिशान तक मिट जावे? नहीं, हमारे लिये अब भी समय है कि हम रुककर देखें कि हम खड्ड के कितने निकट पहुँच गए हैं!

जापान का ऐतिहासिक ढाँचा।

उन्नीसवीं शताब्दी से पहले तक जापान इतिहास में कोई महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं रखता। तब तक वह दुनिया से अलग-थलग देश था जो ज़िमींदारी शासन प्रणाली में रहकर अपने दिन काट रहा था। सोलहवीं शताब्दी में इस द्वीपसमूह में पहलेपहल पुर्तगाल वाले पहुँचे, जिसके बाद से जापनियों में ईसाई मत का प्रचार करने के लिए पादरियों के गरोह के गरोह पहुँचने लगे। ये प्रचारक वहाँ विदेशी साम्राज्यवाद के आध्यात्मिक अगुआ होकर ज़रूर गए लेकिन ज़्यादा वक़्त नहीं बीतने पाया कि ये संकीर्ण धार्मिक मतभेदों को लेकर

आपस में इतना लड़े कि जापान के निवासी बहुत तंग आ गए, और फलस्वरूप जापानियों ने अपने देश का फाटक विदेशियों के लिए दो शताब्दी तक बंद रखा।

इस प्रकार दो सौ साल तक जापान विश्व-इतिहास की मुख्य धारा से अलग होकर अकेला ही पड़ा रहा। इस समय वहाँ वही पुरानी सामंत प्रथा या ज़िमींदारी की प्रणाली क़ायम रही और जापान के सामाजिक जीवन में एक प्रकार के पेशावर सिपाही, जो 'समुराई' कहलाते थे, प्रमुख भाग लेते रहे। इन समुराइयों को वहाँ के राजवंश के लोग अपने घरेलू झगड़े लड़ाइयों में भाग लेने के लिए नौकर रखते थे। इससे एक समय तक जापान के इतिहास में इनका ख़ास महत्व रहा है। इनके बारे में आगे कुछ विस्तार से लिखना अनुचित न होगा।

सन् १८५३ में अमेरिका की नौ सेना के एक कमान्डर, पेरी, ने जापानियों के निषेध किए हुए समुद्र में लंगर डाला और जापानियों के सामने यह प्रस्ताव रखा कि वे जापान का फाटक विदेशियों की तिजारत के लिए खोल दें। पहले तो जापानियों ने विरोध किया लेकिन अमेरिका की सुसज्जित सेना के आगे उन्हें झुकना पड़ा। उन्होंने मजबूर होकर इन शर्तों को मान लिया और एक अनादरणीय संधि पर हस्ताक्षर कर दिए। लेकिन जापानी इस अपमान को भुला न सके और न उन्होंने इस अपमान को भाग्य के ऊपर छोड़कर अपने जी को तसल्ली देना ही ठीक समझा, बल्कि इसके प्रतिरोध के लिए उनके हृदय में एक आग सी लग गई और विदेशियों से बदला लेने के लिए ये अपना संगठन करने लगे। इस भीष्म प्रतिज्ञा को किए आधी शताब्दी भी नहीं बीतने पायी कि सारे संसार ने आश्चर्य से देखा कि

पिछड़े हुए जापान ने इतनी अधिक उन्नति कर ली कि उसके आगे पश्चिम के बहुत से उन्नत देश भी पिछड़े हुए कहे जाने लगे। लेकिन दुर्भाग्य यही हुआ कि जापान अपनी ऐसी उन्नति न कर सका जिसको उसकी वास्तविक उन्नति कही जाती। एक सभ्य और विकसित होनेवाले राष्ट्र की तरह यदि वह अपने उन्नति के मार्ग पर ठीक-ठीक चलता रहता और पश्चिमी पूँजीवाद की लुटेरी और रक्तशोषण की बुरी आदतें न सीख लेता तो अवश्य उसे हम एशिया का नेता मान लेते पर दुःख के साथ कहना पड़ता है कि पथप्रदर्शक या नेता बनने के बजाय उसने भक्षकों और लुटेरों के रास्ते पर चलना ही पसंद किया है।

समुराई।

जापान में पूँजीवाद की उन्नति ने वहाँ के समुराइयों (पेशावर सैनिकों) की दशा बहुत शोचनीय बना दी। घरेलू युद्ध बंद हो जाने से उनके लिए दो ही रास्ते रह गए—या तो फिर घरेलू लड़ाइयों के लिए प्रोत्साहन देकर अपनी स्थिति क़ायम रखें, या दूसरे देशों पर आक्रमण करने की भावना उत्तेजित करें। आगे हम देखेंगे कि ये लोग अपने उद्देश्य में कहाँ तक सफल हुए।

शुरू शुरू में तो समुराई लोग हर तरह के व्यापार को बुरा समझते थे लेकिन कुछ दिनों बाद उन्होंने व्यवसायियों को अपना सबसे बड़ा मित्र समझा, और अपने स्वार्थ-साधन के लिए उनके सच्चे साथी बन गए। उधर पूँजीपतियों ने जब घर के सारे बाज़ारों का शोषण कर लिया तो उनको विदेशी बाज़ारों की तलाश की फ़िक्र हुई जिसके लिए समुराई लोगों की मदद ज़रूरी थी। इस प्रकार चोर-चोर मौसेरे भाई बन

गए और दूसरे देशों को जीतकर उन पर अपना अधिकार जमाने का कार्यक्रम तैयार होने लगा।

सन् १८७१ में समुराइयों का पहला आक्रमण शुरू हुआ और रयूक्यू द्वीपसमूह को जीतकर वहाँ जापानी झंडा फहराया गया। उसके बाद फारमोसा पर आक्रमण की तैयारी की गई और कोरिया को अन्तिम चेतावनी दे दी गई। इसका परिणाम स्पष्ट था। युद्ध-लालसा से पूर्ण जापानी सरकार में बहुत काफ़ी संख्या में समुराई लोग दाख़िल हो गए और ये ही लोग आज जापान की फ़ौजी क़ौम के अगुआ बने हुए हैं।

सन् १८६४ में अंग्रेज़ों और जापानियों के बीच एक समझौता हुआ जिससे शह पाकर जापानियों ने चीन से झगड़ा शुरू कर दिया। इस समय चीन बहुत शक्तिहीन और छिन्न-भिन्न था इससे वह अधिक समय तक जापान का मुक़ाबिला न कर सका और जापानियों ने उससे कोरिया और लाओटॉंग प्रायद्वीप छीन लिया। उस समय का साम्राज्यवादी रूस जापान की इतनी सस्ती जीत को न देख सका और उसने फ्रांस और जर्मनी की सहायता से जापान को इस पर विवश किया कि वह लाओटाँग प्रायद्वीप लौटाल दे। जापान ने मजबूर होकर लाओटाँग लौटा दिया पर यह प्रायद्वीप चीन को नहीं दिया गया बल्कि उसे साम्राज्यवादी रूस हड़प गया। इस समय रूस और जापान दोनों ही साम्राज्यवादी देश थे और दोनों ही उत्तरी चीन पर अपना प्रभुत्व क़ायम रखना चाहते थे। इससे दोनों में पारस्परिक मतभेद और द्वेष का होना स्वाभाविक ही था। फिर इस घटना से तो दोनों में झगड़े की आग और भी फैल गई, जो भीतर ही भीतर दस साल तक सुलगती रही।

दस वर्ष का समय बीतने भी न पाया था कि संसार ने बड़े आश्चर्य से सुना कि जापान ने रूस पर युद्ध की घोषणा कर दी, और देखते ही देखते जापान की नौ सेना ने प्रारंभ में ही कई महत्वपूर्ण विजयें प्राप्त कर लीं। यद्यपि ये अन्तिम और रूस को परास्त कर देनेवाली विजयें नहीं थीं और इस पर कई मत हैं कि यदि यह युद्ध चलता रहता तो अन्त में कौन जीतता ; लेकिन इसकी नौबत ही न आने पायी और उन्नीसवें महीने में अमेरिका ने बीच में पड़कर दोनों देशों में सुलह करा दी । इस सुलह की शर्तों के अनुसार रूस को लाओटांग प्रायद्वीप तो लौटा ही देना पड़ा; साथ ही साथ उसे दक्षिणी मंचूरिया को भी ख़ाली कर देना पड़ा । दूसरी ओर बेचारे निस्सहाय चीन को मंचूरिया का कुछ हिस्सा रेल बनाने के लिए जापानियों को पट्टे पर देने के लिये विवश होना पड़ा । उधर जापान कोरिया को अपने चंगुल में कसता ही गया और पाँच वर्ष बाद उसे जापानी सरकार ने अपने साम्राज्य में शामिल होने की घोषणा कर दी। तब से आज तक यह अभागा देश अत्याचार और क्रूरता का नंगा नाच देख रहा है । उसकी दुःख की कहानी मैं आगे सुनाऊँगा।

इस प्रकार से, सभ्य कहे जानेवाले, जापान ने प्रारंभ ही से सेनावाद को ही अपने उद्देश्य-पूर्ति का मुख्य साधन बनाया है । यहाँ हमें यह न भूल जाना चाहिए कि जापान के साम्राज्य-विस्तार और साधारण तौर पर पूँजीवाद के साम्राज्यवाद में परिवर्तित हो जाने में एक महत्वपूर्ण भेद है। वास्तव में जापान में पूँजीवाद कभी भी अपनी उन्नति के शिखर पर नहीं पहुँच सका क्योंकि वह ज़िमींदारी प्रथा का

समूल नाश करने में कभी समर्थ नहीं हुआ। फलस्वरूप इस देश में औद्योगिक उन्नति सदैव ही मामूली और बेढंगी रही।

सन् १९१८ में जब फ्रांसीसियों और अंग्रेज़ों ने संयुक्त मोर्चा बनाकर सोवियट रूस पर हमला किया तो फ़ौजी जापान के हौसले और भी बढ़ गए, और जब सफ़ेद रूसी जनरल कोलचाक की सहायता के लिए जापानियों को एक निश्चित सिपाहियों की संख्या लेकर साइबीरिया आने का आमंत्रण मिला तो उन्होंने निश्चित से कहीं अधिक सेना साइबीरिया पहुँचा दी और चीनियों की ट्रान्स साइबेरियन रेल का पूर्वी हिस्सा अपने अधिकार में कर लिया। इसके बाद जापानी सोवियट रूस पर विजय का सपना देखने लगे और जापानी सरकार ने भावी विजयों की उम्मीद में फ़ौज और जहाज़ के विस्तार के लिए एक महान् कार्यक्रम का श्रीगणेश कर दिया।

जापनियों के नौसेना विस्तार से अमेरिका का चिन्तित होना स्वाभाविक ही था। वह क्षुब्ध होकर अपने जहाज़ी बेड़े को मज़बूत करने लगा और उसने नये जहाज़ बनाने में इतनी फुर्ती दिखलाई कि जापान को उसका मुकाबला करना एक प्रकार से असंभव सा हो गया। जापान ने इस प्रतिद्वंदिता के काल में ही चीन के सम्मुख अपनी प्रसिद्ध २१ माँगों को रखा जिससे अमेरिका की क्रोधज्वाला और भभक उठी। अमेरिका की नीति चीन के बारे में स्पष्ट थी—वह चीन का द्वार सबके लिये खुला चाहता था जिससे अमेरिका को चीन से व्यापारिक लाभ उठाने का हक़ हासिल रहे, लेकिन जापान की माँगों से उसके हितों पर बहुत धक्का पहुँचता था। पहले तो ऐसा जान पड़ा कि अब जापान और अमेरिका से युद्ध होना अवश्यम्भावी

है लेकिन वह ख़तरा अमेरिका के 'शान्ति-सम्मेलन' के प्रस्ताव के कारण कुछ समय के लिये टल गया। इस सम्मेलन में जो नवशक्ति सम्मेलन (Nine Powers Conference) के नाम से प्रसिद्ध है, जापान ने ब्रिटेन और अमेरिका की नौसेना के मुक़ाबले में अपनी नौसेना का एक औसत स्वीकार कर लिया और चीन में सबके लिये द्वार खुला रखने की स्कीम को भी कम से कम दिखावे के लिये स्वीकार कर लिया।

२

क्या जापानी स्वयं आज़ाद हैं ?

परस्पर का विरोध।

जापानी और पश्चिमी पूँजीपतियों में एक खास भेद है। जापान में पूँजीपतियों ने ज़मीदारी वर्ग से अभी तक शासन शक्ति नहीं छीन पाई है। परिणाम यह हुआ कि जापान का औद्योगिक ढाँचा कमज़ोर ही रह गया। कपड़े और शस्त्रादि के कारखानों को छोड़कर वहाँ के अन्य कुल व्यवसाय ज़्यादा उन्नत नहीं हैं और सारे देश में स्थान-स्थान पर छोटे मोटे कारखाने ही चालू हैं। दो वास्तविक विरोधी राजनैतिक पद्धतियों—पूँजीवाद और ज़मीदारी—के एक साथ क़ायम रहने का परिणाम यह हुआ है कि जापान में अनेक विषम और विरोधी बातें उपस्थित हो गई हैं जिसके फल-स्वरूप आज-कल का जापानी जीवन बहुत-सी स्पष्ट विभिन्नताओं और पारस्परिक विरोधी बातों से भरा हुआ है।

किसान

जापान में लाखों किसान गुलामी अथवा अत्यन्त निर्धन अवस्था में जीवन निर्वाह कर रहे हैं। वे बिल्कुल पुराने ढंग से ज़मीन जोतते हैं, खेतों की सिंचाई हाथ की चर्खियों द्वारा करते हैं और अनाज की मड़ाई हाथ से पीट-पीटकर होती है। यह ख्याल ग़लत है कि जापानी दुनिया में सबसे अधिक चावल पैदा करते हैं। वे तो खेती बारी के काम में बहुत पिछड़े हुए हैं। वे तरह-तरह के अन्धविश्वास, क़र्ज और मुसीबतों में फँसे हुए हैं। हिन्दोस्तान की तरह वे भी छोटे-छोटे लाखों ज़मीदारों का पोषण करते हैं, जो न तो उन्हें धन, न बीज, न सामान और न वैज्ञानिक उपायों द्वारा उनको कुछ सहायता देते हैं।

फ्रीडा उटली के कथनानुसार जापान के किसानों की ऐसी बुरी दशा और छोटे गृहव्यवसायों के क़ायम रहने का ख़ास कारण तो यह है कि वहाँ किसानों को दासता के बन्धन से मुक्ति नहीं मिली। लेकिन आम तौर पर इसका कारण यह भी है कि वहाँ के राजनैतिक तथा सामाजिक संगठन और राष्ट्र के आर्थिक जीवन से ज़मीदारी का एक-मात्र बहिष्कार नहीं हो सका। ज़मीदार केवल लगान वसूल करते हैं, इसके अतिरिक्त वे कुछ नहीं करते। लगान का ग़ल्ले के रूप में लिया जाना ज़िमीदारी क़िस्म के शोषण के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता। यह ग़ल्ले का लगान पैदावार पर नहीं निर्भर है। इसका नतीजा यह होता है कि बुरी फ़सल के साल किसानों का ही नुक़सान होता है और ज़िमीदार हर हालत में कूता हुआ गल्ला पा जाता है। अब आपही सोचिए कि किसान के पास, जिसे आधी

उपज लगान के रूप में दे देना पड़ता है, कितना रुपया और कामों—खाद तथा जानवर या नये प्रकार के हल, इत्यादि—के लिये बचता होगा ?

दूसरी ओर जापान के लाखों ज़िमीदारों के पास, जिनकी ज़िमीदारी अक्सर चन्द एकड़ों से ज़्यादा नहीं होती, कोई पूंजी नहीं होती और जो थोड़ी बहुत होती भी है वह उनके लिए बड़ी-बड़ी ब्याजों पर क़र्ज़ देने या छोटे मोटे घरेलू व्यवसायों को चालू रखने के लिये ही काफ़ी होती है।

चूँकि जापान में सिवाय दरबार सम्बन्धी क्रान्ति के कभी सामाजिक क्रान्ति नहीं हुई इसलिए किसानों की मुसीबत कभी दूर न हो पाई। नतीजा बहुत कुछ यह हुआ कि ज़िमीदारी प्रथा की केवल राजनैतिक सत्ता अवश्य नष्ट हो गई लेकिन देश के आर्थिक जीवन पर ज़मीन्दारों का प्रभुत्व क़ायम रहा। आर्थिक दृष्टि से जापान उन पुरानी प्रथाओं को अपनाए ही रहा जो देश की औद्योगिक उन्नति में सदा से बाधक रही हैं। यदि देश के औद्योगिक उन्नति में इस प्रकार बाधा न पड़ती तो देश की बढ़ती हुई आबादी का एक बहुत बड़ा हिस्सा काम में लगा रह सकता। राजनैतिक दृष्टि से जापान एक पुलिस राज्य बन गया जिसमें ज़िमीदार और धनी लोग हाकिम हैं और जिसमें देश की कुल सम्पत्ति ज़ुल्म और अत्याचार के साधन एकत्रित करने में व्यय होने लगी।

जापान के किसानों की दरिद्रता इस हद तक पहुँच गई है कि उनका सामाजिक पतन सीमा को पार कर गया है। भूखे किसानों में अपनी जवान लड़कियाँ वेश्यावृत्ति के लिए या कारख़ानों की ग़ुलामी के लिए बेच देना एक साधारण-सी बात हो गई है। इसी वजह से जापान के कारख़ानों को इतनी सस्ती और अधिक मज़दूरिनें काम

करने को मिल जाती हैं कि वे दुनिया के बड़े-से-बड़े तथा उन्नत औद्योगिक देशों का मुक़ाबिला कर सकते हैं। फ्रीडा उटली ने एक सर्टिफ़िकेट की नक़ल दी है जिसकी ख़ानापूरी उन जापानी लड़कियों के लिए ज़रूरी है जिनको वेश्यालयों में रंडियों की तरह रहने को दे दिया जाता है। कारख़ानों में काम करने का एक़रारनामा भी क़रीब-क़रीब इसी तरह का होता है।

लड़की का नाम ....

उम्र ....

स्थान ....

वल्दियत ....

तुम ....के मालिक ....को ....बरसों के लिए अपनी मुलाज़िमत में लेने को तैयार हो। ऊपर लिखी हुई लड़की को ....एन की क़ीमत पर दे दिया। उसमें से ....एन, पोशाक के लिए तुम अपने पास रखो बाक़ी ... एन मुझे मिल गए।

मैं इसका ज़िम्मेवार हूँ कि लड़की जब तक तुम्हारी मुलाज़िमत में रहेगी तुमको तकलीफ़ न देगी।

वह .....सम्प्रदाय की है और उसका .....मन्दिर ...... है।

माँ बाप का नाम ....

नाम गवाह ....

नाम मालिक ....

नाम मकान (वेश्यालय) ....

अमन के दिनों में जापान में बेकारों की संख्या बहुत थी। उन्हें बेकारी के ज़माने में कुछ नहीं मिलता था जिसके कारण हज़ारों भूख और तंगी से मर गए। उनकी मुसीबत का अन्दाज़ा निम्नलिखित बयान से, जो कुछ दिन हुए जापान के माइनिची में प्रकाशित हुआ था, ज़्यादा साफ़ तौर से लग सकता है।

'निर्धन मनुष्य जिनका उद्यम और रोज़गार बिना किसी अपराध के ही जाता रहा, भूखों मरने या आत्महत्या करने के लिए रह गए हैं। नगरों के सार्वजनिक स्थान दुखी भिखमंगों से भरे रहते हैं। बहुत से तो गलियों और आम सड़कों पर ही निराशा तथा थकान से गिरकर समाप्त हो जाते हैं। यह सब मनुष्य हैं, और एक गौरवशील राष्ट्र के नागरिक हैं।'

उसी पत्र में फिर यह प्रकाशित हुआ :

'कहा गया है कि पुरानी पद्धति के कारण जापान में बेकारी दूसरे देशों की भाँति दुखद अथवा गंभीर परिस्थिति कभी नहीं उत्पन्न करेगी। पर मज़दूर अपने परिवारों की शरण में जाने के लिए अपने-अपने गाँवों को जा रहे हैं। केवल किसान ही मामूली से मामूली जीवन-निर्वाह के दर्जे पर नहीं पहुँच गए हैं बल्कि स्थानीय शासन केन्द्र भी बड़ी शीघ्रता से धनहीन और बेकार होता जा रहा है। आज अगर अधिकारी वर्ग लगान अदाई के लिये गाँववालों की जायदाद ले भी लें तो भी वे इस जायदाद को नक़द का रूप नहीं दे सकते। सबसे अधिक दुख की बात तो यह है कि देहातों में प्रारम्भिक शिक्षालय भी धन की कमी से बन्द होते जा रहे हैं।

प्रो० ओकॉनराय वहाँ के किसानों की मुसीबत नीचे के ज़ोरदार शब्दों में बयान करते हैं :

"सचमुच निर्वाह के लिए बहुत से गाँवों में बदलई का रिवाज हो चला है परन्तु किसान को नक़द भी तो चाहिए। नतीजा यह हुआ है कि वहाँ लड़कियाँ काफ़ी तादाद में बेची जाने लगी हैं। ऐसे एक नहीं कई प्रान्त हैं जहाँ केवल बुड्ढे ही दिखाई देते हैं। पूरा यामागाता केन लड़कियों से ख़ाली हो गया है, जो कि वेश्या व्यवसायियों और एजेन्टों के हाथ बेंच दी गई हैं। इन्चिगो में भी, जहाँ जवान लड़की कम देखने में आती हैं, लड़कियों के ख़रीदार काफ़ी रुपया देने को तैयार रहते हैं। जापान के किसान जहाँ पहले भगवान से बेटा पाने की प्रार्थना करते थे अब लड़की के लिए दुआ माँगते हैं। लड़की कभी-कभी पैदा होने से पहले ही बिक जाती है, परन्तु अब इसका भाव भी गिर गया है। और यह बात विचारणीय हो गई कि क्या जो क़ीमत मिल रही है उससे बच्चे की परवरिश एकरारनामा के आरम्भ तक हो सकेगी या नहीं। लड़कों का रखना तो बहुत कठिन समस्या समझी जाती है। उनकी बिक्री नहीं होती और उनका जीवन-निर्वाह बहुत महँगा हो गया है। लेकिन उनके लिए भी एक नया रोज़गार शुरू हो गया है। मेरा मतलब बच्चों के दलालों से है। ये लोग बेकार बच्चों को ले लेते हैं और जल्लादों के हवाले कर देते हैं। नाजायज़ सन्तानों के साथ तो जापान में हमेशा से ऐसा होता ही आया है परन्तु अब जायज़ औलादों के साथ भी यह बर्ताव होने लगा है। कुछ रुपयों के एवज़ में दलाल बच्चों को ले लेता है और फिर उनका कोई पता निशान बाक़ी नहीं रह जाता।'

जापान की स्त्रियां।

जापानी औरतों की हालत बयान करते हुए प्रो० ओकॉनराय लिखते हैं :

'शायद संसार में कहीं और इतनी प्रेम करनेवाली स्त्रियाँ नहीं होतीं जैसी जापान में होती हैं। विवाह के पश्चात् जापानी औरत के कोमल हृदय में प्रेम का एक छोटा सा अंकुर पति के लिए पूर्ण रूप से एक स्थायी भक्ति पैदा करने के लिए पर्याप्त है। यह प्रेम निर्धनता, अस्वस्थता तथा वियोग से तनिक भी कम नहीं होता। वह तो इतना विशाल होता है कि पश्चिमी दृष्टि में इसपर विश्वास भी नहीं किया जाता। फिर भी जापानी पति कभी ऐसे प्रेम को बहुत महत्ता प्रदान करने की कोशिश नहीं करता। उसकी स्त्री उसकी गृहस्थी सम्हालने और उसके बच्चे जनने का बेएवज़ काम करती है; वह उससे अलग रह कर मौज करता है। वास्तविक जापानी अर्थ में उसकी प्रेमिका उसकी रखेलू स्त्री या बाज़ारू वेश्या है।

यद्यपि जापान में पातिव्रत धर्म इतना कड़ा है कि स्त्रियों का ज़रा सा अपराध एक महापाप माना जाता है, लेकिन पुरुषों को इस मामले में अपने मनमानी करने की पूरी स्वतंत्रता है। यदि उसकी आमदनी अच्छी है तो उसके लिये रखेली औरतें रखना जायज़ समझा जाता है, और वह अक्सर ऐसा करता भी है। इस तरह की औरतों की संख्या वह अपनी आय के अनुसार घटा बढ़ा सकता है।

यदि जापानी स्त्रियाँ पुराने चाल की या कम समझ होतीं तो एक

बात भी थी परन्तु असलियत तो यह है कि वे वहाँ के पुरुषों से अधिक बुद्धिवाली होती हैं। यह उनका दुर्भाग्य ही कहा जावेगा कि उनके जीवन का ताना बाना जापान के ऐसे कुल पुरुषों के साथ बिना गया है जो अपने घमण्ड के आगे तमाम तर्क और दलीलों को पोच समझते हैं। वह उसी घर में, जहाँ उसकी स्त्री गुलाम की तरह उसकी सेवा करती रहती है, वेश्याओं और बाज़ारू औरतों को बेखटके रख सकता है और अपनी पत्नी को उनकी सेवा में हाज़िर रहने की आज्ञा भी दे सकता है। यही नहीं बल्कि वह अपने और अपनी प्रेमिका के लिए सेज ठीक करने और उनके हुक्म के इन्तज़ार में बाहर खड़े रहने का हुक्म भी दे सकता है। उसको शराब की बोतलें गर्म करके बिस्तर के पास लाने की भी आज्ञा दी जा सकती है, जिसके बारे में वह भली भाँति जानती है कि वह उसके पति की वासना को उत्तेजित करने के लिए माँगी गई है। पति को अधिकार है कि वह अपनी स्त्री को केवल चले जाने की आज्ञा देकर उसे तिलाक़ दे दे।'

हमारे देश में भी स्त्रियों का स्थान अधिक प्रशंसा के योग्य नहीं है। हमारे समाज में भी सैकड़ों ख़राबियाँ हैं जिनके कारण स्त्रियों की दशा बेबसी की हो गई है; फिर भी हमारे और जापानी दृष्टिकोण में बड़ा अन्तर है। अपने देश में वर्तमान समय में हम भले ही स्त्रियों से ग़ुलामी कराते हों लेकिन हमारे यहाँ के आदर्श ऐसे नहीं हैं। 'जहाँ नारियों की पूजा नहीं होती वहाँ देवता का वास नहीं होता'— ऐसे आदर्शों वाले इस देश में स्त्रियों को पुरुषों से कभी हीन नहीं माना गया है। भले ही आज हम उस पर अमल न करते हों पर जापान में

ता औरतें केवल वासना की तृप्ति की साधन हैं—इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन का तो सबसे बड़ा फल यह हुआ है कि औरतों की दासता बहुत अंशों में दूर हो गयी है और अब उनको सामाजिक तथा राजनैतिक कामों में भाग लेने का अवसर प्राप्त होने लगा है। औरतों को केवल गृहस्थी का एक हिस्सा समझने का नीच ख्याल तो केवल फासिस्ट सिद्धान्तों की उपज और पतित शासकमंडल द्वारा निकले मुर्दा समाज के नियमों का परिणाम है।

जापान में औरतों की हालत अत्यन्त शोचनीय है। वहाँ वे केवल ग़ुलाम और बच्चा जनने की मशीनें समझी जाती हैं। यही कारण है कि जापानी सिपाही जीते हुए मुल्कों में स्त्रियों की आबरू लेने और उन्हें अंग भंग करने अथवा जान से मार डालने में बहुत ख़ुश होते हैं। जिन गाँवों पर जापानी सिपाही अधिकार करते हैं वहाँ से वे एक निश्चित संख्या में औरतें माँगते हैं और इन औरतों को वे फ़ौजी बारकों में ले जाते हैं। दिन में इन स्त्रियों से तरह तरह के घरेलू काम लिए जाते हैं और रात में वे जापानी सिपाहियों की काम तृप्ति का साधन बनती हैं। जब वे गर्भवती या बीमार हो जाती हैं तो वे गोली का निशाना बना दी जाती हैं।

जापानी फौज जब किसी शहर पर क़ब्ज़ा करती है तो सिपाही मनमाने कुकर्म और लूटमार और अग्निकान्ड के लिए छोड़ दिए जाते हैं। एक नहीं अनेकों स्थान पर दर्जनों औरतें रस्सियों से बाँधकर नंगी फिराई गई हैं और खुले आम सिपाहियों ने उनके साथ लाज शर्म छोड़ कर कुकर्म किए हैं। लेकिन शाही फ़ौज की पतित काम वासना का

उदाहरण पतन की सीमा को भी पार कर गया जब नैनकिंग शहर में सैकड़ों जापानी सिपाहियों ने अपने पतलून उतार कर खुले आम हस्तमैथुन किया।

प्रो० ओकॉनराय की मशहूर किताब 'जापान का ख़तरा' (Menace of Japan) से ली गई नीचे की मिसालों से यह मालूम हो जायगा कि जापान में स्त्रियों के साथ कैसा बुरा व्यवहार किया जाता है। यह सही है कि आमतौर पर ऐसी घटनाओं पर ध्यान नहीं दिया जा सकता, लेकिन और जगहों की अपेक्षा जापान में ऐसी बातें आम हैं, न कि ख़ास। एक नववधू की दर्दनाक कहानी का प्रो० ओकॉनराय इस तरह वर्णन करते हैं :

'मुझे यह कभी नहीं भूलेगा जब पहली बार मैंने एक नव-विवाहिता लड़की को अपने पति की ताली के इन्तज़ार में शयनागार के दरवाज़े या चिक के बाहर खड़े हुए देखा। उसके विवाह के एक हफ़्ते बाद ही उसका शौहर एक तवायफ़ लाया था। उसने अपनी स्त्री को सेज ठीक करके बाहर ठहरने के लिए हुक्म दिया था। जब मैंने उसे देखा तो वह रो और काँप रही थी। वह अपने दोनों हाथों को मज़बूती से कसे हुए थी और जब जब वह आगे को झुकती थी वह अपना सर ज़मीन पर पटकती थी। ऐसा प्रतीत होता था कि मानों वह अपने भावों को अपना सर पृथ्वी से टकराकर बाहर निकालना चाहती थी। सहसा उसकी आँखों से गरम-गरम आँसू झलकने लगे और बाद को वे आँखों में न समाकर उसके उदास मुख पर बहने लगे। उसने आँसू रोकने के लिए अपने ओठ काटने शुरू कर दिया। यहाँ तक कि उसके मुँह के किनारों से ख़ून बहने लगा।

मेरी उपस्थिति से जापानी पति कुछ नाराज़ सा हुआ; इस कारण मैंने आधे साल तक वहाँ दुबारा जाने का साहस नहीं किया। जब मैं वहाँ किसी काम से फिर गया तो वही दृश्य मैंने फिर देखा। जापानी पति वेश्या के साथ कमरे में था, परन्तु इस बार वह लड़की चुपचाप एक पत्र पढ़ रही थी और मुझे देखते ही जापानी सभ्यता के अनुसार सलाम करके वह मेरे स्वागत के लिए आगे बढ़ी। अब उस बेचारी ने यह सीख लिया था कि आज्ञा पालन ही उसका धर्म है।'

मि० साटो नामी एक जापानी लेखक ने भी लिखा है कि योशिको नामी एक स्त्री, बरसों तक पति परायण रहने पर भी, अपने पति द्वारा निकाल दी गई। इस बात के बारे में लिखते हुए प्रो० ओकॉनराय कहते हैं कि योशिको सी एक नहीं हज़ारों मिसाल जापान में मिल जावेंगी।

योशिको की दुखद रामकहानी इस प्रकार है :

'१६ वर्ष की उम्र में योशिको का विवाह एक सौदागर से हुआ परन्तु उसके गर्भवती होने पर उसके पति ने अपनी वासनातृप्ति के लिए कई रखेलियाँ रख लीं। फ़जूलख़र्ची और ऐयाशी की वजह से घर की तमाम दौलत जल्द ख़त्म हो गई। जब घर में पूरी तौर से आर्थिक तबाही आ गई तो योशिको ने सोचा कि यही समय एक वफ़ादार बीबी की सच्ची काबिलियत ज़ाहिर करने का है। उसने लज्जा परन्तु प्रसन्नता से कहा कि वह नहीं चाहती थी कि वह घर में बैठी रहे और उसका पति कमाई के पीछे तबाह हो। वह भी रुपया कमाना चाहती थी। इस पर योशियो ने देखा कि उसके पति के चेहरे पर एक खुशी का रंग ज़ाहिर होने लगा, पर उसकी सारी वफ़ादारी मिट्टी में

मिल गई जब उसके शौहर ने कहा कि उसने तै कर लिया है कि वह उसे वेश्या की तरह बेच देगा।

ऐसा ही हुआ भी और योशियो वेश्याओं के गरोह में रहने के बाद कुछ ही दिन में पागल हो गई। फिर वह अपनी अविवाहित अवस्था की याद करके यही बकती रहती थी कि—वह अच्छा आदमी है—वह एक सौदागर है—मैं जानती हूँ कि मैं उसको प्यार करूँगी।'

वेश्याएँ।

प्रो० ओकॉनराय की किताब से फिर कुछ उद्धरण देना असंगत न होगा। वैसे तो दुनिया में ऐसा कोई देश नहीं है जहाँ किसी न किसी रूप में वेश्याएँ न मौजूद हों, परन्तु जापान में तो इसे पूर्ण से सामाजिक समर्थन प्राप्त है।

प्रो० ओकॉनराय फिर कहते हैं: 'मैं आप लोगों का ध्यान देहातों की ओर ले जाना चाहता हूँ जहाँ अकाल पड़ना असाधारण नहीं बल्कि एक साधारण सी बात है। किसी झोपड़ी को ले लीजिए जिसमें एक किसान, उसकी स्त्री और उसकी लड़की रहती है। सब एक पुरानी अँगेठी को घेर कर आग ताप रहे हैं। इतने में एक नर्म आवाज़ वहाँ के सन्नाटे को भंग करती हुई भीतर आने के लिए प्रार्थना करती है। बुड्ढा किसान दरवाज़े तक जाकर आनेवाले का स्वागत करता है। पहले तो आगंतुक को एक छोटी सी प्याली में हरी चाय पेश की जाती है, फिर कुछ देर के वार्तालाप के बाद असली बात खुलती है। लड़की का मोल तोल होने लगता है। लड़की की राय कोई चीज़ नहीं चाहे वह ७, १७, या २७ साल की हो। उसे अपने माँ बाप की

आज्ञा माननी चाहिए। जब सब बात तय हो जाती है तब लड़की पहले अपने माँ बाप को, फिर आगन्तुक को सलाम करती है और अपनी थोड़ी बहुत चीज़ें गठरी में बाँध कर दलाल के साथ चली जाती है।

पहले तो रण्डीख़ाने की बड़ी इमारत देखकर उसे आश्चर्य होता है और शायद वह अपनी गन्दी झोपड़ी छूट जाने पर कुछ ख़ुश भी होती है, पर ठेकेदार ताली बजाता है और एक बुड्ढी औरत बाहर आती है। वह उसे नहलाने और रेशमी लबादा, किमोनो, दिए जाने का हुक्म देता है। किमोनो के लिए लड़की को बाद में दाम भी देना पड़ता है। दस बरस के बाद उससे अक्सर कपड़ों का दाम वसूल किया जाता है और इसी तरह होते-होते वह बीमारी या बुढ़ापे की वजह से वहाँ से निकाल भी दी जाती है।

ये लाइसेन्सी रण्डीख़ाने सरकार को कर देकर उसकी काफ़ी आमदनी बढ़ाते हैं। इसी वजह से सरकार से इनकी रक्षा का समुचित प्रबन्ध रहता है। जापानी पार्लमेन्ट के मेम्बरों को भी इन रण्डीख़ानों से काफ़ी घूस की रक़में मिलती हैं। एक रंडियों के मोहल्ले के तबादिले के अवसर पर एक रंडीख़ाने के डाइरेक्टर ने पार्टियों के नेताओं को बहुत रिश्वतें दीं। गत केबिनेट मंत्री को ५०००० और न्याय के भूतपूर्व मंत्री को २००००० एन मिले। यह इन रंडीख़ानों के मालिकों की उदारता का एक छोटा सा नमूना है; जिनका निर्वाह अल्पवयस्क भोली लड़कियों की इज़्ज़त बेचकर होता है।

जापान बच्चों का स्वर्ग कहा जाता है, लेकिन छिपे-छिपे इस बच्चों के स्वर्ग के सैकड़ों घरों में छोटी छोटी लड़कियाँ रण्डी का पेशा करने

के लिए तैयार की जाती हैं। इस प्रकार १५ वर्ष से कम उम्रवाली लड़कियों की संख्या, जो रंडी बनकर और अपनी इज़्ज़त बेंचकर जापान की राष्ट्रीयता के काम में हाथ बटा रही हैं, ४०००००० हैं।

जापान में हर साल बीस लाख से ज़्यादा बच्चे पैदा होते हैं। परन्तु न जाने क्यों उनमें से थोड़े ही अपने माँ बाप को पसन्द आते हैं। उनसे मुक्त होने के कई उपाय जापान में बर्ते जाते हैं जिनमें सबसे आसान उन्हें रात में या भीड़ में छोड़ देना है। हजारों बच्चे इस तरह प्रतिवर्ष अकेले टोकियो में ही सड़कों पर छोड़ दिए जाते हैं। बहुतों का ख़ातमा तो उनकी नरम गर्दन मरोड़कर या उनकी नाक बन्द करके कर दिया जाता है। लेकिन सबसे अधिक संख्या तो उनकी है जो या तो बेंच दिए जाते हैं या यों ही बाँट दिए जाते हैं। उस पर मज़ा यह कि कुत्ते बिल्लियों की तरह जापानी बच्चों को ख़रीद फ़रोख़्त करनेवाले इन राक्षस एजेन्टों को जापानी क़ानून की पूर्ण सहायता प्राप्त है।'

मज़दूर।

जिनीवा में जापानी प्रतिनिधि ने बार-बार इस बात की घोषणा की थी कि जापान में तीन लाख मज़दूर हैं जो पाँच सौ मज़दूर सभाओं के मेम्बर हैं। परन्तु सच तो यह है कि पूरे जापानी साम्राज्य में एक भी आज़ाद मज़दूर सभा नहीं है। एक बार जापान के पत्र माइनिची ने लिखा था कि क़ानूनन जापान में कोई मज़दूर सभा नहीं रह सकती क्योंकि वहाँ उसकी रक्षा के लिए कोई क़ानून नहीं है। संसार में जापान ही एक अकेला देश है जो मज़दूर संगठन के हक़ को नहीं मानता।

जापान में उन मज़दूरनियों की संख्या, जिन्हें उनके माँ-बाप ने मज़दूरी के लिए मिलमालिकों के यहाँ एक निश्चित समय तक के लिए पट्टे पर दे दिया है, मज़दूरों से कहीं ज़्यादा है। ये औरतें प्रायः कारख़ानों के कार्टरों में ही रहती हैं और कभी बाहर नहीं जाने पातीं। वे अपने मालिकों पर पूर्णतया निर्भर हैं। उनको अपने स्वत्वों की रक्षा के लिए संगठित होने की बिलकुल मनाही है। अगर कभी वे ऐसा करने का उद्योग भी करती हैं तो उनके माँ बाप द्वारा उन पर दबाव डाला जाता है; और उनसे इक़रारनामे का रुपया वापस माँगा जाता है जिसके देने में वे बिल्कुल असमर्थ रहते हैं। इसके अलावा ये लड़कियाँ अपने मालिकों पर इतनी निर्भर रहती हैं कि मालिक कार्टरों से निकाल देने की धमकी देकर उनसे सब कुछ करा सकते हैं। इन लड़कियों से कारख़ानों के कर्मचारी बिलकुल निडर होकर दुर्व्यवहार करते हैं क्योंकि इसकी सुनवाई कहीं नहीं हो सकती।

औरतों से मर्द मज़दूरों की संख्या केवल कपड़े और हथियारों के कारख़ानों में ही अधिक है, लेकिन यहाँ भी उनका न तो कोई संगठन और न उनमें कोई शक्ति ही है। अगर वे हड़ताल या किसी और ढंग से विरोध करने का कभी साहस करते हैं तो उन्हें फ़ौरन् गिरफ़्तार कर लिया जाता है और कभी-कभी गोली से भी उड़ा दिया जाता है।

कोई नियमित जनगणना न होने के कारण जापान में बेकार मज़-दूरों की ठीक-ठीक संख्या बताई नहीं जा सकती पर अनुमान से यह संख्या लाखों की कही जा सकती है। वहाँ काम के घण्टे भी निश्चित नहीं हैं। वहाँ निःशुल्क डाक्टरी, बीमा, दाईपने अथवा पेंशन का भी कोई इन्तज़ाम नहीं है। पूरब के सबसे उन्नत राष्ट्र जापान

में मज़दूरों की हालत हिन्दुस्तानी मज़दूरों की हालत से कुछ भी बेहतर नहीं है। इस मुक़ाबिले से यह मन्शा नहीं है कि हमारे मज़दूरों की बुरी दशा या मुसीबत बिलकुल ठीक या उचित है। इससे तो मज़दूर समाज की उस मुसीबत का पता चलता है जो देशव्यापी न होकर विश्व-व्यापी कही जा सकती है और जिसे जात पांत या रंग के भेदभाव एक-दूसरे से अलग नहीं कर सकते।

जापान में कम्यूनिस्ट पार्टी को ग़ैर क़ानूनी माना जाता है और वहाँ कम्यूनिस्टों को आजन्म कारागार या कभी-कभी मौत की सज़ा दी जाती है, लेकिन इतना होते हुए भी वहाँ एक मज़बूत कम्यूनिस्ट पार्टी है जो पोशीदा तौर पर काम करती है। पर वहाँ एक 'कानूनी' सोशलिस्ट पार्टी ज़रूर है जो पूँजीपतियों द्वारा अन्य चलाई जानेवाली संस्थाओं की तरह एक है।

जापानी सरकार।

जापान साम्राज्य के मालिक सम्राट् हिरोहिटो हैं जिनके पूर्वज देवता माने जाते हैं। उनके नीचे फिर पार्लियामेन्ट है जो डायट (Diet) कहलाती है। यह अंग्रेज़ों की पार्लमेन्ट से बहुत-कुछ मिलती जुलती है। इसमें भी हाउस आफ़ लार्डस् की तरह एक रईसों की सभा है और दूसरी हाउस आफ़ कामन्स की तरह जनता की धारा सभा है। परन्तु इसमें बड़ा भेद यह है कि असल में यह जापानी डायट तानाशाही हुकूमत के हाथ की कठपुतली है, जो किसी का भी विरोध नहीं सह सकती। जापान के सुधार काल के पहले तक जापान का सम्राट् कुछ शासक था मिनिस्टर परिवारों के हाथ में क़ैदी रहता

था। उसकी दशा नैपाल के "पाँच सरकार" से ज़्यादा कुछ नहीं थी, परन्तु ये शासक परिवार सम्राटों का दैवी सम्मान क़ायम रखते थे और उनको बहुमूल्य पदार्थ समझते थे। वर्तमान समय में भी जापान का सम्राट् केवल देश का सम्राट् ही नहीं वरन् उस जापानी धर्म का भी प्रधान माना जाता है जिसे नया शिंटो कहते हैं।

जापान में कभी भी प्रजातंत्रवाद अथवा वैधानिक शाही हुकूमत नहीं थी। जब जापान का सम्बन्ध दुनिया के अन्य देशों से हो गया तो वहाँ के रईसों ने वर्तमान पूँजीवाद के साधनों की नकल कर ली और पिछड़े हुये ज़िमीदारी समाज को एक अजीब ढंग के पूँजीवाद का जामा पहिना दिया। इस तरह जापानी शासन पद्धति प्रजा की क्रान्ति का परिणाम नहीं बल्कि मारकिस इटो नाम के एक मनुष्य के मस्तिष्क का फल है, जो विदेशों में शिक्षित हुआ था और जो यह जानता था कि अगर माल का अधिकार एक बार भी पार्लमेन्ट के हाथ में आ गया तो तानाशाही हुकूमत का अन्त हो जायगा। इस वजह से जापानी डायट को शासक मण्डल मुक़र्रर करने या उस पर क़ाबू रखने का अधिकार प्राप्त नहीं है और जापानी शासन पद्धति एक प्रकार से स्थायी कर दी गई है। उसमें परिवर्तन करने की कोशिश करना बग़ावत के बराबर है।

जापानी गवर्नमेन्ट में ख़ास बात उसकी दो अलग-अलग शक्तियाँ हैं। जलसेना और थलसेना डायट या कैबिनेट के अधिकार में नहीं है। दूसरी तरफ़ 'जेनरल स्टाफ़' युद्ध मंत्री न चुन कर कैबिनेट बनने में बाधक हो सकता है। जापान में युद्ध मंत्री 'जेनरल स्टाफ़' की स्वीकृति से ही मुक़र्रर होता है।

जापान के कुछ प्रसिद्ध परिवार दुनिया के सबसे बड़े पूँजीपतियों में से हैं, जिनमें मुख्य हैं मित्सुई और मित्सूबीशी। मित्सुई परिवार महाजनी, सौदागरी, बड़े उद्योग और अस्त्र शस्त्र के काम करता है और मित्सूबीशी जहाज़ बनाने, इंजिनियरी, दरियाई बीमा, गोदाम, बिजली की इंजीनियरी और हवाई जहाज़ के काम से संसर्ग रखता है।

ये दोनों परिवार अपने-अपने राजनैतिक दलों के संरक्षक हैं, जो इस उदारता के बदले में अपने संरक्षकों के कारबार में राजनैतिक सहायता देते रहते हैं। सेकियूकी जो वहाँ का अनुदार दल है, मित्सुई दल की तरफ़ है। और मिन्सेइटो को, जो वहाँ का उदार दल कहा जा सकता है, मित्सूबीशी की संरक्षिता प्राप्त है। इन दोनों के विरुद्ध वहाँ का फ़ौजीदल है जो जेनरल स्टाफ़ के अधिकार में है और जिसका सिद्धान्त है कि अन्य देशों पर दाब और हुकूमत से ही जापान की नेकनामी बढ़ेगी।

सन् २९-३० का आर्थिक विश्वसंकट जापान के लिए उसकी औद्योगिक कमज़ोरी के कारण बहुत बुरा साबित हुआ। उसके घर का सौदा बिल्कुल ख़त्म हो गया और साल भर में उसकी एक तिहाई तिजारत कम हो गई। किसानों की मुसीबत बहुत ज्यादा बढ़ गई और देश में एक सामाजिक क्रान्ति का भय प्रतीत होने लगा।

पिछले दस बरसों में जापान ज़रूर एक प्रकार की नर्म नीति बरत सका था, क्योंकि पिछली लड़ाई के बाद विदेशी व्यापार बहुत बढ़ गया था और केवल शस्त्र का ही रोज़गार नफ़े का साधन न था। पर अब इस विश्वसंकट ने युद्ध समर्थकों के अनुकूल वातावरण बना दिया और बैरन शिडेहारा की 'उदार' गवर्नमेन्ट इस आर्थिक संकट

का मुकाबिला न कर सकी। नतीजा यह हुआ कि १९३१ में उसका अन्त हो गया और उसकी जगह जेनरल स्टाफ़ का राज हो गया।

इससे यह न समझना चाहिए कि उन बड़े परिवारों की हार हो गई। इसका असर उन पर यही पड़ा कि, चूँकि विश्व के आर्थिक संकट से हर प्रकार की तिजारत को बहुत नुक़सान हुआ था, उनके लिए दो ही मार्ग खुले रह गए—अपने को मिटा देना या फ़ौजी सामान बना कर फ़ायदा उठाना—इनमें से उन्होंने, जेनरल स्टाफ़ से सहयोग करके फौजी माल बनाने का रास्ता पकड़ लिया।

जापान का धर्म।

हममें से बहुतों का यह ख्याल है कि जापानी बौद्ध हैं और इसलिए हमारे और उनके बीच कुछ-न-कुछ धार्मिक समानता है, परन्तु वास्तव में बात यह है कि बुद्धमत का प्रभाव जापानियों के ऊपर से बहुत दिनों से हट चुका है और अब वहाँ का राजधर्म शिन्टो है जो एक बहुत पुराने ढंग का विचार है और जिसमें इन्द्रियपूजा और पितृपूजा शामिल है। इस शिन्टो धर्म के आधुनिक अर्थ के अनुसार जापानी देवताओं की सन्तान हैं और इसलिए वे और तमाम दूसरी जातियों से ऊँचे माने जाते हैं। इसी से यह विश्वास भी पैदा हो गया कि जापानी दुनिया पर हुकूमत करने के लिए ही पैदा हुए हैं, और इसी कारण उनको यह अधिकार है कि वे जितना चाहें उतनी ख़ून ख़राबी और लूट-मार करें।

जापानी जाति-सिद्धान्त के अनुसार संसार में तीन वर्ग हैं। पहले तो देवताओं की सन्तान यानी स्वयम् जापानी लोग हैं जो और दूसरों से बड़े हैं। उनके बाद वहशी लोग हैं जिनमें सफ़ेद और बाकी पीली

जातियाँ शामिल हैं। तीसरे और सबसे नीचे कुटुम्बा हैं जिनमें हिन्दुस्तान, और लंका के लोग, और तमाम हबशी या काली जातियाँ हैं। जब अमरीका ने १६२४ में अपना इमीग्रेशन कानून जारी किया, जिसके द्वारा एशियावालों का अमेरिका में जाना मना हो गया, उस समय जापान का क्रोध पागलपन की हद तक पहुँच गया। तब जापानियों ने 'एशिया एशियाइयों के लिए' का नारा लगाना शुरू किया।

बौद्ध धर्म पहलेपहल जापान में कोरिया से आया। यद्यपि पहले-पहल बौद्ध धर्म के लिए पुराने शिन्टो धर्म को अपने में मिला लेने में कोई कठिनाई नहीं जान पड़ी परन्तु वह अपना प्रभाव बहुत दिनों तक क़ायम न रख सका। यह इतनी जल्दी कमज़ोर हो गया कि १८६८ ई० तक एक प्रकार से बिल्कुल मृतप्राय हो गया, और पुराना शिन्टो धर्म नए रूप में 'नवीन शिन्टो' के नाम से सामने आ गया। यह नया शिन्टो धर्म जापानियों के युद्ध-प्रिय स्वभाव के बिल्कुल अनुकूल बनाया गया है और अन्य धर्मों से मिल जाने के डर से जापानी गवर्नमेन्ट ने इसे 'मत' अथवा 'धर्म' कहे जाने की मनाही कर दी है ताकि यह ईसाई धर्म या बौद्ध धर्म की श्रेणी में न उतर आवे। वास्तव में शिन्टो धर्म सम्राट् पूजा या मिकाडो पूजा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। एक विद्वान् लेखक के मुताबिक़, 'शिन्टो' का अर्थ जापान है और जापान का अर्थ शिन्टो है। शिन्टो का सबसे बड़ा पुजारी और ईश्वर का अवतार तथा आदिशक्ति का प्रतिनिधि स्वयं जापान का सम्राट् है।'

देहातों में अब भी वही पुराना शिन्टो धर्म बना हुआ है जिसमें प्रकृति की शक्तियों और देवी-देवताओं की पूजा शामिल है। बचा खुचा

बौद्धधर्म धीरे-धीरे लोप होता जा रहा है। वह कई सम्प्रदायों में बँट गया है और बौद्ध मन्दिर अब कुकर्मों के अड्डे बन गए हैं। बौद्ध पुजारी अब केवल अपने जजमानों के धार्मिक संस्कार कराना भर जानते हैं। अब उनमें वह आत्माभिमान भी नहीं रह गया है जिससे वे पुजारी होने के योग्य कहे जा सकें। प्रो० ओकॉनराय बौद्धधर्म के निचरिन सम्प्रदाय के टोकियो के पास के एक बड़े मन्दिर की एक आँखों देखी घृणित घटना का वर्णन इस प्रकार देते हैं :

'सारे जापान से पागल औरतें निचरिन सम्प्रदाय की निगरानी में भेजी जाती थीं। अनावश्यक पत्नियों को वहाँ इसी बहाने भेज दिया जाता था। सन् १९२८ में इस मन्दिर के कारनामे 'ओसाका असाही' नामक पत्र में छपे लेकिन शीघ्र ही इस रिपोर्ट का अनुवाद पुलीस द्वारा ज़ब्त कर लिया गया। इस रिपोर्ट में पुजारियों के कुकर्मों का पूरा हाल दिया गया था। इसमें ऐयाशी के ऐसे-ऐसे दास्तान थे जिनके सामने रोम के पतन के समय की कहानियाँ बिल्कुल फीकी पड़ जाती हैं। औरतें इस मन्दिर में बन्द रहती थीं और पुजारी उनसे पैशाचिक ढंग से व्यभिचार करते थे। व्यभिचार के एक नहीं अनेकों क्रूर तरीके वहाँ के मठाधीशों ने निकाले थे क्योंकि स्त्रियों पर अत्याचार और उनकी हत्या तो वहाँ एक मामूली सी बात थी। जब उस मन्दिर पर धावा हुआ तो एक नहीं अनेकों अंगभंग स्त्रियाँ मन्दिर के कोनों में ठूँसी हुई मिलीं, जहाँ उनके रक्षक रक्त से भीगे हुए नोटों से जुआ खेल रहे थे। मन्दिर के महन्त इन स्त्रियों पर विष्टा तक किया करते थे। इनमें से बहुत सी स्त्रियाँ तो मर चुकी थीं और उनके शरीर सड़कर सारे स्थान को दुर्गन्धित कर रहे थे।'

३

विजय लालसा।

कोरिया।

कोरिया ही वह अभागा देश था जो सबसे पहले जापान-साम्राज्य में मिलाया गया। तीस साल के क्रूर साम्राज्यवादी शासन ने देश को बिल्कुल तबाह कर दिया है, और वहाँ की जनता बुरी तरह लूटी जा रही है। कोरिया के निवासियों के नैतिक पतन के लिए जापानियों ने कोई प्रयत्न उठा नहीं रखा और उनमें मादक वस्तुओं के प्रचार का इतना अधिक प्रोत्साहन दिया गया कि सारे देश में अफ़ीम की दुकानें खुल गईं।

कोरिया के निवासियों को वोट का अधिकार नहीं है, भले ही उनका सामाजिक, आर्थिक और विद्वत्ता का कोई भी दरजा क्यों न हो। यहाँ के निवासी जापानी स्कूलों में नहीं पढ़ सकते और उनको

अधिक विद्याभ्यास का अवसर भी नहीं दिया जाता। कोरिया के मज़दूर एक ही प्रकार के काम करने के लिए जापानी मज़दूरों से आधी मजदूरी पाते हैं और अगर उन्हें जापान में मजदूरी करने को भेजा जाता है तो उन्हें रहने तक की जगह नहीं दी जाती, और अगर दी भी गई तो वह जानवरों के बाड़े से भी ख़राब होती है।

गुलाम क़ौमों की दशा प्रायः सब जगह एक-सी ही है चाहे वह योरप में हों, या एशिया, या अफ्रीका में। जापान का 'एशिया एशियावालों के लिए' वाला नारा कितना असत्य है इसका कोरिया जीता जागता उदाहरण है।

कोरिया के स्कूलों में कोरिया की भाषा या कोरिया का इतिहास पढ़ाना मना है। वहाँ तो पश्चिमी जातियों का इतिहास भी नहीं पढ़ाया जाता। लोग बिना अपराध बताये क़ैद कर लिए जाते हैं। इतना ही नहीं, वे हर प्रकार की राजनीतिक स्वतंत्रता से भी वंचित हैं। देश की अच्छी ज़मीन का पाँचवाँ भाग जापानियों को दे दिया गया है। जापान का एक कुली भी कोरिया के किसी उच्च पदाधिकारी का अपमान ही नहीं कर सकता, बल्कि अवसर पड़ने पर मार भी सकता है जिसकी सुनवाई कहीं भी नहीं हो सकती। अक्सर कोरिया निवासियों को विवश होकर बिना मज़दूरी जापानी सरकार का काम करना पड़ता है और जापानी दिन दहाड़े उनकी औरतों को भगा ले जाकर अपने देश में बेच लेते हैं।

प्रो० ओकॉनराय कहते हैं—'बड़े भूकम्प के बाद कोरियावालों के क़त्लेआम का हुक्म दिया गया था। १६२३ में हज़ारों कोरियन तलवार की धार उतार दिए गए। भूकम्प तथा क़त्लआम दोनों समय

में सपत्नीक कोरिया प्रायद्वीप में उपस्थित था। वहाँ एक भी मकान खड़ा न रहा। अगर इतना ही होता तो ग़नीमत थी, वहाँ के लोगों के पास खाना और कपड़ा भी नहीं था। जापान में एक अफ़वाह उड़ाई गई कि कोरिया निवासी जापान पर हमला करने का विचार कर रहे हैं—और ऐसे समय में जब उनके पास अस्त्रशस्त्र और खाना पीना कुछ भी नहीं था! इस अफ़वाह का फल यह हुआ कि जापानी तलवार लेकर लड़ने के लिए तैयार हो गए और जो कोई भी कोरियन मर्द, औरत और बच्चा मिला सबको क़त्ल कर दिया गया। जो अपने को जापानी सिद्ध कर सकता था उसी की जान बख्शी जाती थी। इस प्रकार कम से कम ८००० कोरियन मारे गए। ये बिल्कुल निहत्थे थे। इस क़त्ल आम का परिणाम यह हुआ कि कोरिया वासियों की संख्या १० प्रतिशत कम हो गई।'

मंचूरिया।

सत्तरहवीं शताब्दी से मंचूरिया चीन साम्राज्य का एक भाग रहा है और उसकी जनता वास्तव में चीनी है। १९३१ में बिना किसी चेतावनी के जापानी फ़ौज ने चीन के इस बाहरी प्रान्त पर आक्रमण कर दिया और इसे 'स्वतंत्र' घोषित कर दिया। वहाँ मंचू सम्राट्, हेनरी पूई, जो बहुत दिन हुये गद्दी से उतार दिया गया था और जो अरसे से जापानी संरक्षता में रह रहा था, फिर वापस लाया गया। सम्राट् पूई की हुकूमत नाम मात्र की है, इनको कुछ चुने हुए जापानियों की मातहती में काम करना पड़ता है जो मंचूकू सरकार के सलाहकार के नाम से प्रसिद्ध हैं।

इन सलाहकारों के विषय में अमलेतो वेस्पा ने लिखा है :

'जैसे ही जापानी फ़ौज मंचूरिया में पहुँची वैसे ही कोई भी जापानी जो तनिक भी रूसी और चीनी भाषा बोल सकता था 'सलाहकार' बना दिया गया। उस समय ये जापानी उत्तरी मंचूरियाँ में क्या कर रहे थे यह भी जानने योग्य है। इनमें से अधिकांश अपराधी, नशीली चीज़ बेचनेवाले, बिना महसूल दिए माल ले जानेवाले, इत्यादि थे। ये सब के सब पक्के बदमाश थे जिन्हें पहलेपहल मंचूकू सरकार में 'सलाहकार' कह कर ऊँचे से ऊँचे स्थान दिये गये।

जिन्हें कल तक संसार घृणा की दृष्टि से देखता था वे ही आज वहाँ के शासक बन बैठे, और उन्हें लाखों रूसी और चीनियों के ऊपर जीवन-मरण का अधिकार मिल गया। कुछ भी दिन नहीं व्यतीत होने पाये थे कि इन सलाहकारों ने पुलीस को धनी चीनी और रूसियों को क़ैद करने की आज्ञा दे दी ताकि उन्हें छुड़ाने के लिये उनके परिवारों से रुपया ऐंठा जाय।'

वेस्पा की पुस्तक से एक अत्यन्त दुःखदायी क़िस्सा यहाँ दिया जाता है :

'हारबिन में जापानियों के आने पर हज़ारों सोवियट-क्रान्ति से भगे हुये रूसी गलियों में निकल आये और जापानी झंडा लेकर बानज़ाई, जापानी सलाम, का नारा बुलन्द करने लगे। बहुत-सी जवान रूसी लड़कियाँ जापानी पैदल-सिपाहियों से मिलने और अफ़सरों को फूल के गुलदस्ते और चुम्बन देने के लिए किराए पर लायी गईं। कुछ देर के बाद हज़ारों की संख्या में इन गद्दार रूसियों का जुलूस निकला जो एक तरफ़ जापानियों की प्रशंसा कर रहा था

और दूसरी तरफ़ चीनियों को गाली दे रहा था। लेकिन इन भोलेभाले और धोखे में आए हुए रूसियों का जापान से प्रेम बहुत क्षणिक था। जाग्रति बहुत शीघ्र और बहुत अशिष्टता से आई। जापानियों के आने के कुछ ही सप्ताह बाद हज़ारों रूसी मंचूरिया से भागने लगे, हज़ारों जेल में डाल दिए गए, और हज़ारों गोली से उड़ा दिए गए। सैकड़ों रूसी लड़कियों के साथ अन्यायपूर्ण एवं घृणित व्यभिचार किया गया। जापानियों का यह अमानुषिक व्यवहार शहरों ही तक सीमित नहीं रहा, बल्कि देहातों में तो पतन की सीमा को भी पार कर गया। एक भी घर इनके अत्याचार से वंचित न रह गया। अनगिनत रूसी और चीनी मार डाले गए, हज़ारों घर लूटे गए और जला भी दिए गए। दस वर्ष तक की लड़कियाँ उनके व्यभिचार से न बच सकीं और फलस्वरूप अधिकांश काल कवलित हो गईं। शराब की दूकानों पर आक्रमण किया गया। दूकानदार मार डाले गए। जापानी सिपाही शराब पीकर देहातों में निकल गए और पहले से भी अधिक निर्दयता का व्यवहार करने लगे।'

श्रीमती वेस्पा, जो अपने पति के भाग जाने पर कुछ दिनों तक मंचूरिया की जेल में बंद रहीं, जापानी जेलों में क़ैदियों के साथ होने वाले अमानुषिक व्यवहार के बारे में एक घटना का वर्णन इस प्रकार करती हैं :

'कुछ देर बाद एक रूसी स्त्री अन्दर लाई गई, जो देखने में बड़ी भयानक प्रतीत होती थी। उसके सर पर एक भी बाल नहीं था और उसकी उँगलियों के नाख़ून उखड़ गए थे। मैंने इस तरह की बहुत-सी चीनी और रूसी औरतें देखीं जिनके हाथ, पाँव टूटे हुए थे और जो

स्ट्रेचर पर कमरे के बाहर लायी जाती थीं। उनमें से एक सोलह वर्ष की चीनी लड़की भी थी जो छः महीने से जेल यातना भुगत रही थी। उसको कितनी ही बार यातनाएँ दी गईं, यहाँ तक कि उसके पैर के तलवे जला दिये गये थे और आँखों की बरौनियाँ भी दियासलाई से जलाई गई थीं। एक रूसी औरत को लगातार ४० दिन तक यातना दी गई थी। दोनों हाथों की हरएक उँगली कुचल दी गई थी और उसके सारे बाल जड़ से उखाड़ लिए गए थे। उसकी भी आँखों की बरौनियाँ दियासलाई से जला दी गई थीं। उसके हाथ-पैर बाँधकर उसे घंटों छत से लटका दिया जाता था।'

यातनाएँ।

सन् १९३२ में लिटन कमीशन*जिसे लीग आफ़ नेशन्स ने नियुक्त किया था, मंचूरिया की हालत देखने के लिए आया। जापानियों के अत्याचारों के विषय में जाँच करना इसका ध्येय था। जब यह कमीशन हारबिन पहुँचा तो कोरिया के एक भोले भाले सिपाही ने, जो जापानी पुलिस का सिपाही था, लिटन कमीशन के एक मेम्बर को एक अर्ज़ी देने के लिए आगे बढ़ा। लेकिन उस बेचारे को पीछे ढकेल दिया गया और अर्ज़ी देने से पूर्व ही उसे क़ैदी बना लिया गया। यह भोला कोरियन सिपाही समझता था कि मंचूरिया को स्वतंत्रता देने का अधिकार लीग आफ़ नेशन्स को है। इसीलिए उसने पत्र में लिखा था कि मंचूरिया की अपेक्षा उसके देश, कोरिया को स्वतंत्रता दी जानी चाहिए क्योंकि वहाँ के लोगों ने जापानियों के अत्याचारों को अधिक सहन किया है। इस सिपाही को उसी रात को यातनाएँ

दी गई और बाद में गोली मार दी गई। उस रात की दुःखद घटना के बारे में वेस्पा ने लिखा है :

'नौ बजे रात जिस समय उक्त कमीशन हारबिन में पहली दावत खा रहा था, बिचारे कोरियन सिपाही, किम क्वाक, के ऊपर घोर अमानुषिक जुल्म हो रहा था। पहले तो जापानी पुलिस के अफसर ने उसे इच्छानुसार जवाब देने दिया, लेकिन जब उसकी बातों से कोई राज़ न खुला तो चीफ़ के गुस्से की कोई हद न रही। उसने उस ग़रीब कोरियन को बहुत यातना दी और उसके हाथ पैर तुड़वाकर उसके तलवे जलवा डाले। चीफ़ का क्रोध इतने पर भी शान्त नहीं हुआ और अन्त में उसने इस अंग भंग प्राणी की आँख में अपनी क़लम घुसेड़ दी। इतनी दुर्दशा के बाद फिर उस बेचारे को गोली मार दी गई।'

'मंचूकू' में जापानी हुकूमत।

मंचूरिया में जापानी हुकूमत का कलुषित परिणाम बड़ी आसानी से देखा जा सकता है। वहाँ जनता की दशा बहुत शोचनीय हो गई है। फौजी कारखानों के अलावा वहाँ और किसी प्रकार के कारखाने नहीं रह गये हैं जिससे निर्धनता और भी बढ़ गई है। जापानी पराजित देशों के लोगों को निरंतर मूर्ख रखना चाहते हैं ताकि गुलाम मालिकों की बराबरी करने का ख्याल भी न कर सकें। इसी लिये 'मंचूकू' में एक भी विश्वविद्यालय नहीं है, और स्कूलों में ऐसी शिक्षा दी जाती है जो गुलामी को और भी मज़बूत बनाती है। जब से जापान ने इस देश को जीता है तब से अब विद्या प्रदान के सिलसिले में केवल एक चौथाई हिस्सा रुपया व्यय होता है।

जापानी साम्राज्यवाद की दूसरी नीति पराजित लोगों में नशे की आदत डालना है । चीन की राष्ट्रीय सरकार ने अफीम के खिलाफ़ एक बहुत बड़ा आन्दोलन चलाया था, जिसकी वजह से चीनी तेजी से इसी बुरी आदत के चंगुल से मुक्त हो रहे थे। पर चीन के जिन-जिन हिस्सों पर जापान ने अपना कब्जा जमा लिया है, वहाँ जगह-जगह अफीम की दुकानें खुलवा दी गई हैं । इससे एक ओर तो जापानी अफीम के सौदागर करोड़ों रुपयों का फायदा उठाते हैं और दूसरी ओर साम्राज्यवादी गुलाम जनता को नशे का शिकार बना रहे हैं ।

पर चाहे जो हो जापानी अब तक मंचूरिया या चीन के किसी भी हिस्से को ठीक से पराजित नहीं कर पाये हैं। सिवा शहरों, बन्दरगाहों और रेल की पटरियों के बाकी हर जगह चीनी या चीनी छापा मार सिपाहियों का ही राज है । चीनी छापा मार फ़ौज जापानियों के पैर नहीं जमने देती और जहाँ भी मौका पाती है अचानक हमला कर देती है और उनका सफ़ाया कर देती है ।

चीन—एक बड़ा शिकार !

यद्यपि सन् १९११-१२ की क्रान्ति से चीन में मंचू शासन का अन्त हो गया, लेकिन इससे वहाँ के बड़े-बड़े फ़ौजी जनरलों की शक्ति कम न हुई; उल्टे उन्होंने वहाँ के सूबों में अपनी-अपनी हुकूमतें क़ायम कर ली और फ़ौजी शासक बन बैठे। इस प्रकार सारा देश, छोटे-छोटे प्रान्तों में बँट गया और उसकी संगठित शक्ति बिखर पड़ी। इसका परिणाम यह हुआ कि पश्चिमी शक्तियों को चीन से और भी सहूलियतें माँगने का अवसर मिल गया। जापान भी अपने पड़ोसी की लूट का

एक जरा सा हिस्सा लेकर संतुष्ट नहीं हो सकता था, बल्कि वह तो पूरे देश पर अपना राज्य क़ायम करना चाहता था। इसीलिए उसने १६१५ में चीन के सामने अपनी मशहूर २१ शर्तें पेश कीं, जिनको मान लेने पर चीन का दर्जा एक ग़ुलाम देश से ज़्यादा न रह जाता। पहले तो इन माँगों को पीकिंग की सरकार ने स्वीकार कर लिया लेकिन चीनी नवयुवक इस अपमान को सहने के लिए तैयार न थे। चीनी विद्यार्थियों ने रूसी क्रांति और सोवियट की नई जीतों से प्रभावित होकर संसार भर के साम्राज्यवादियों के विरुद्ध अपनी आवाज़ बुलन्द की। उनका प्यारा देश दूसरी विदेशी शक्ति के हाथ बेच दिया जाय यह उनके लिए असह्य था। उनके जोशीले हृदयों ने, जो अपने देश को उन्नति और स्वतंत्रता की ओर ले जाने के लिए आतुर थे, इस अपमान भरे आत्मसमर्पण में केवल अपनी आशाओं का विनाश ही नहीं देखा, बल्कि उनकी आँखों के सामने क्रूर जापानी सिपाहियों द्वारा अपने देश की लूट और बर्बादी का भावी चित्र भी नाचने लगा।

पीकिंग शहर में लगभग १५ हज़ार विद्यार्थियों का बड़ा जलूस निकला जिसने पीकिंग की विश्वासघाती सरकार के विरुद्ध सड़कों पर प्रदर्शन किया। उनमें से बहुत से विद्यार्थी गिरफ़्तार किए गए, बहुत से मारे पीटे गए और बहुतों को तरह-तरह की यातनाएँ दी गईं लेकिन वे उस गवर्नमेन्ट के नाश का प्रदर्शन करते ही रहे जो उनके देश को दूसरों के हाथ बेच देने को तैयार थी। लाखों की संख्या में ये विद्यार्थी गाँवों, मिलों और फ़ैक्टरियों में जा पहुँचे और आनेवाले संकट की सूचना देने के लिए सारे देश में फैल गए। उन्होंने देश के एक छोर से दूसरे छोर तक इस भावी क्रांति के संदेश को फैला दिया।

वर्षा की पहिली बौछार से पृथ्वी जिस प्रकार नवांकुरों से शस्य श्यामला हो उठती है, चीन का सारा अलसाया देश विद्यार्थियों की इस पुकार से आशा और स्फूर्ति से भर गया। सारे देश में आज़ादी की लहर सी दौड़ गई। जगह-जगह किसान संस्थाएँ स्थापित हो गईं और बड़े शहरों में मज़दूरों ने सैकड़ों मज़दूर संघ क़ायम कर लिए। धीरे-धीरे इन मज़दूर संघों की शक्ति बढ़ने लगी और शीघ्र ही वहाँ एक अखिल चीनी मज़दूर फ़ेडरेशन की स्थापना हो गई। इस फ़ेडरेशन ने, नए परिवर्तनों से प्रभावित होकर, चीन की राजनैतिक क्रान्ति में भाग लेना निश्चित कर लिया। इससे राष्ट्रीय क्रांति का मार्ग बहुत सुगम हो गया।

चीन की जनता को जागृत करने में चीन की कम्यूनिस्ट पार्टी का बहुत बड़ा हाथ था। इसका नतीजा यह हुआ कि जब क्योमिंटाँग का फिर से सन् १६२४ में संगठन हुआ तो कम्यूनिस्टों को भी उसमें शामिल होने का हक़ दिया गया। क्योमिंटाँग में सोविएट यूनियन से शीघ्र ही मैत्री कर ली क्योंकि उस समय रूस ही एक ऐसा देश था जो चीन को वास्तव में स्वतंत्र देखना चाहता था।

इस तरह चीन में राष्ट्रीय एका हो जाने पर देश में एक प्रकार की नई जान आ गई। पीकिंग की धोखेबाज सरकार का खात्मा तो कभी हो चुका था और अब चांकाई शेक की फौजें देश में सब ओर आगे बढ़ रही थीं ताकि खुदमुख्तार तानाशाहों को हरा कर चीन एक सुदृढ़ राष्ट्र बना लिया जाय।

शंघाई में कम्यूनिस्ट पार्टी की अध्यक्षता में मज़दूरों ने उत्तरी तानाशाह शासकों की फौज को खदेड़ दिया, और शहर को चांगकाई-

शेक के सुपुर्द कर दिया। लेकिन खेद है कि शंघाई की यह महत्वपूर्ण घटना वहाँ के कुछ पूंजीपतियों के स्वार्थ के कारण फीकी पड़ गई, जो अपने लाभ के आगे देश के सम्मान का कोई मूल्य नहीं समझते थे।

चीन में विरोधी हलचलें।

शंघाई के पूँजीपति, जिनके स्वार्थ का सम्बन्ध विदेशियों के हित से था, मज़दूर वर्ग की इस बढ़ती हुई शक्ति को देखकर डर गए। उन्होंने इस विपत्ति से बचने के लिये चांगकाईशेक को आर्थिक सहायता देकर अपने पक्ष में कर लेना चाहा पर शर्त यह रखी कि मज़दूर वर्ग निहत्था कर दिया जाय और मज़दूर संघों से प्रगतिवादी और क्रान्तिकारी अंश निकाल दिया जावे। अभाग्यवश चांगकाईशेक इन पूँजीपतियों के चंगुल में फँस गए और उन्होंने उनकी शर्तों को स्वीकार कर लिया जिसका नतीजा यह हुआ कि मज़दूर वर्ग बुरी तरह से दबाया जाने लगा।

ज़्यादा समय नहीं बीतने पाया कि चीनी कम्यूनिस्ट पार्टी और अखिल चीनी मज़दूर फ़ेडरेशन ग़ैरक़ानूनी घोषित कर दिए गए और कम्यूनिस्टों पर तरह-तरह के ज़ुल्म तोड़े जाने लगे। लेकिन कम्यूनिस्ट दल इससे हतोत्साह नहीं हुआ वरन् उसने गुप्त रीति से अपने दल का संगठन करना शुरू किया और माओत्सीतुंग, चूदेह और होलांग सरीखे प्रसिद्ध कम्यूनिस्ट नेताओं ने अपनी पूरी शक्ति चीनी लाल सेना के संगठन में लगा दी। इस प्रकार ग़ैरक़ानूनी होकर भी कम्यूनिस्ट पार्टी ने गाँवों और शहरों में अपना एक सुदृढ़ संगठन क़ायम कर लिया।

सन् १९२७ के दिसंबर में मज़दूरों ने कैन्टन शहर पर अपना

अधिकार जमा लिया। उन्होंने क़रीब तीन हज़ार राजनैतिक क़ैदियों को मुक्त कर दिया और कैन्टन की कम्यून बना ली, ताकि आजाद शहर अपनी शासन प्रणाली निश्चित करे। वहाँ के मज़दूर, किसान तथा सिपाही प्रतिनिधियों ने पहली बार चीन में सोवियट सरकार की घोषणा कर दी।

इस घोषणा को हुए तीन दिन भी न हुए थे कि सारे कैंटन को खून से डुबो दिया गया। क्योमिंटाँग की सेना ने, जिसको जापानी नौ सेना का सहयोग प्राप्त था, लाल सेना का समूल नाश करने में कोई कसर न उठा रखी। लेकिन इस प्रकार की जागृति को दमन सदा के लिए नहीं दबा सकता, अतः उक्त घोषणा से प्रभावित होकर दूसरे ही वर्ष इस जागरण की लहर फिर उठी जो इस बार मध्य और दक्षिण चीन तक फैल गई। परिणाम यह हुआ कि इन सूबों में वास्तविक सोवियट चीन की स्थापना हो गई।

चीन का गृहयुद्ध।

१९३० के प्रारम्भ तक चीनी लाल सेना में लाखों मनुष्य सम्मिलित हो गए और एक ही साल में उन्होंने चांगकाईशेक के तीन भीषण आक्रमणों को पीछे ढकेल दिया।

प्रतिवर्ष क्योमिंटाँग सरकार कम्यूनिस्टों के विरुद्ध फ़ौज भेजती रही लेकिन चीन की लाल सेना उसे बराबर हराती रही। लाल सेना के पास हथियारों की कमी तो थी ही, उसके सैनिकों को अधिक शिक्षा भी नहीं मिली थी। फिर भी लाल सेना बराबर क्योमिंटाँग की फौजों को हराती रही। इसका कारण यह था कि लाल सेना को जनता का

वास्तविक बल प्राप्त था। जनता यह समझती थी कि लाल सेना ने उसे आजादी, स्वाभिमान, राजनैतिक हक और जमीनें दी थीं। इन लड़ाइयों के दरमियान में चांगकाईशेक के बहुत से सिपाही लाल सेना से मिल गए, क्योंकि कम्यूनिस्ट नेताओं की अपील ऐसी सीधी-सादी और लोगों के दिलों में घर कर लेनेवाली होती थी कि क्योमिंटाँग के सिपाहियों की आत्मा लाल सेना में सम्मिलित होने को खिंच जाती थी। उन अपीलों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :

'सफ़ेद फौजों के भाइयो! तुम ज़मींदारों के लिए क्यों लड़ रहे हो! हम लोग सब ग़रीब किसान हैं जो अपने और तुम्हारे दोनों के अधिकारों के लिए लड़ रहे हैं। भाइयो! हमारे साथ आओ। अपनी बन्दूकें लाओ और क्रान्ति के लिए लड़ो!'

यद्यपि चांगकाईशेक को स्पष्ट रूप से ज्ञात हो गया था कि जापानियों से सुलह की कोई सम्भावना नहीं है फिर भी वे १९३६-१९३७ तक कम्यूनिस्टों से सुलह करने के लिए तैयार न हो सके। उनका खयाल था कि कम्यूनिस्ट ही राष्ट्रीय एके में बाधक थे, जो क्योमिंटाँग सरकार की थोड़ी पूँजी देश की आर्थिक स्थिति सुधारने के बजाय, गृहयुद्ध में ख़र्च करा देते थे। पर कम्यूनिस्टों का रवैया चाँगकाईशेक की तरफ़ दूसरा था, क्योंकि उनको अच्छी तरह ज्ञात था कि चीन का उद्धार तभी हो सकता है जब संगठित मोरचा बनाकर जापानी दुश्मन का मुक़ाबला किया जावे। लेकिन चांगकाईशेक कम्यूनिस्टों की नीति को बराबर शक की निगाह से देखते रहे जिससे तबाही जड़ पकड़ती गई।

राष्ट्रीय एकता के बिना क्योमिंटाँग सरकार जापानियों का मुक़ाबला

करने का ख़याल भी नहीं कर सकती थी। इसलिए अपनी शान क़ायम रखने के लिए और अपनी कमज़ोरियों पर पर्दा डालने के लिए, नैनकिंग को प्रतिवर्ष ज़्यादती का मुकाबिला खुशामद बरामद से करना पड़ता था। लेकिन ज़्यादा खुशामद से भी लड़ाकू जापानियों की लालच को तृप्त नहीं किया जा सकता था। दबने से जापानियों की माँगें और बढ़ती गयीं और लोगों में असंतोष भी बहुत बढ़ गया, लेकिन नैनकिंग गवर्नमेन्ट की दबने की नीति बनी ही रही। यहाँ तक कि १९३५ की क्योमिंटांग कांग्रेस में चांगकाईशेक को यह कहना पड़ा: 'हम शान्ति न छोड़ेंगे लेकिन हम बेकार क़ुर्बानियों का भी ज़िक्र न करेंगे जब तक कि हम बलिदानों के लिए बाध्य न कर दिए जावें।'

जहाँ तक सोवियट चीन का सम्बन्ध था, चांगकाईशेक ने शान्ति की कोई चिन्ता नहीं की। कम्यूनिस्टों के राष्ट्रीय एके की लगातार कोशिश करने पर भी उनको एकदम ख़तम कर देने के लिए सात लाख सिपाहियों द्वारा चौथा और पाँचवाँ उपयोग किया गया।

चारों तरफ़ से दबाए जाने पर चीनी लाल सेना ने वर्तमान समय के सबसे अद्भुत कारनामे और इतिहास में सबसे बड़े सफ़र का निश्चय किया जो "लंबी सफ़र" के नाम से प्रसिद्ध है। आरम्भ में ही ९०,००० सशस्त्र आदमियों ने अचानक क़िलेबन्दियों की चार क़तारें तोड़ डालीं। इतना ही नहीं संसार के सबसे ज़्यादा नाहमवार देशों में आठ हज़ार मील और अठारह पहाड़ी घाटियों और चौबीस नदियों को पार करती हुई लालसेना एक वर्ष से अधिक पैदल चलकर अन्त में शान्शी सूबे में पहुँची।

लाल सेना का उत्तर की ओर जाना नैनकिंग गवर्नमेन्ट के लिए

एक बड़ी समस्या हो गई; खासकर जब उनको मालूम हुआ कि सोवियट रूस की सीमा के निकट एक नया चीनी सोवियट देश पैदा हो गया है।

मंचूरिया का भूतपूर्व गवर्नर च्यांग स्यू-लियांग, अपना देश जापानियों को सुपुर्द करने के बाद, केन्द्रीय गवर्नमेन्ट के लिए एक बोझ साबित होने लगा, लेकिन किसी न किसी तरह उसकी परवरिश ज़रूरी थी क्योंकि उसे एक बड़ी फ़ौज को खिलाना पड़ता था जो ऐसा न होने पर बाग़ी हो सकती थी। चांगकाई-शेक को इस दिक़्क़त से छूट जाने का एक ही तरीक़ा समझ में आया। उन्होंने इस भूतपूर्व जंगी अफ़सर को इस शर्त पर लाल प्रान्तों की गवर्नरी देना स्वीकार किया कि वह चीनी लाल सेना को नष्ट कर अपनी हुकूमत कायम कर ले। परन्तु च्यांग स्यू-लियांग जापानियों से बहुत नफ़रत करता था क्योंकि उन्होंने उसके प्रान्त लेने के पहले उसके बाप को भी मरवा डाला था। दूसरी ओर वह कम्यूनिस्टों से बहुत दिनों तक लड़कर उनके देशप्रेम सुव्यवस्था और जापान विरोधी स्वभाव से बहुत प्रभावित हुआ था। वह जल्द ही समझ गया कि आक्रमण के विरुद्ध सार्वदेशिक विरोध का आयोजन ज़रूरी है इसलिए उसने सोवियट चीन से एक गुप्त सन्धि कर ली।

दो बरस बाद चांगकाईशेक स्वयं लाल सेना की विरोधी कार्रवाइयों के निरीक्षण के लिए सियान पहुँचे। पर उनको यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि च्यांग स्यू-लियांग ने कम्यूनिस्टों के खिलाफ़ लड़ने से इनकार कर दिया और जापानियों के विरुद्ध भेजे जाने की प्रार्थना की। उसने कहा कि लाल सेना एक देश-भक्त संस्था है और बजाय बर्बाद किए जाने के उसे जापानियों से लड़ने का मौक़ा देना

चाहिए। इस पर चांगकाईशेक ने उसकी फ़ौज को तोड़ देने की धमकी दी पर इस धमकी का फल यह हुआ कि ख़ुद चांगकाईशेक ही गिरफ़्तार कर लिए गए।

जब कम्यूनिस्टों को चांगकाईशेक की गिरिफ़्तारी का पता चला तो वे फ़ौरन् उन्हें छुड़ाने के लिए आए। वे बदला लेने की भावना से अन्धे नहीं हो गए। वे जानते थे कि चांगकाईशेक देश-विरोधी न थे, और ज़रूरत केवल इसकी थी कि उन्हें यह समझा दिया जावे कि देश की भलाई इसी में है कि जापानियों को अपने देश से बाहर निकालने में कम्यूनिस्टों से पूरी मदद ली जावे, और राष्ट्रीय एका कायम हो।

चीन का मुक़ाबला।

चीन और जापान के सामाजिक संगठन में बड़ा अन्तर है। यहाँ पर यह बताना आवश्यक होगा कि चीन का सामाजिक सुधार राष्ट्रीय क्रान्ति के साथ साथ हुआ, परन्तु जापान में एक बहुत भद्दे ढंग और थोड़े थोड़े अरसे के बाद, शासकों की अध्यक्षता में, औद्योगिक उन्नति का विकास हुआ है। यही कारण है कि चीन की उन्नति के मार्ग में भले वहाँ के उच्चवर्गीय, प्रतिक्रियावादी लोगों ने अनेकों रुकावटें डाली हों, लेकिन उसकी जो कुछ भी उन्नति हुई उसकी नीव बहुत मज़बूत है। जापान में जागृति के नेता उच्चश्रेणी के लोग ही थे जो पश्चिमी पूँजीपतियों की तरह स्वयम् भी प्रतिक्रिया-वादी थे।

ज़िमींदारी के चंगुल से बाहर न निकल सकने के कारण जापानी उद्योग-धन्धे पश्चिमी ढंग और पैमाने पर तरक़्क़ी न कर सके। जापान

के सामाजिक संगठन में वह शक्ति न थी कि वह अपने उद्योग-धन्धों को ब्रिटेन या अमेरिका के धन्धों के मुक़ाबले का बना सकें। अगर जापानी उद्योग-धन्धा पिछड़ा हुआ न होता और अगर जापान चीन में पश्चिमी देशों का व्यवसाय, इत्यादि में मुक़ाबला कर सकता तो शायद, जब तक नैनकिंग गवर्नमेण्ट चीनी सोवियट प्रान्तों से लड़ती रहती, वह चीन के घरेलू झगड़े से फायदा उठाने की नीति पर ही चलता रहता। जब जब चांगकाईशेक कम्यूनिस्टों से लड़ने के लिये अपनी फौज़ें भेजते तब तब जापान चीन का एक हिस्सा चुपके से निकल जाता था। चांगकाईशेक बुरी तरह फँसे हुये थे—एक बार जालिम जापान के सामने झुकने की वजह से अब उन्हें बराबर झुकना ही पड़ता था।

चांगकाईशेक को धीरे धीरे यह भलीभांति मालूम हो गया था कि जापान से सुलह असम्भव है, पर कम्यूनिस्टों से सुलह किये बग़ैर वे जापानियों का मुकाबला नहीं कर सकते थे। उनको पहले इस पर विश्वास न हो सका कि जिनको हज़ारों की संख्या में वे क़त्ल करा चुके थे, जिनका पीछा उन्होंने एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में किया था, जिनके ख़िलाफ़ बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ लड़ी थीं, वे ही लोग उन्हें सच्ची मदद देने को तैयार हो जायँगे। पर अन्त में सियान की घटना के मौक़े पर कम्यूनिस्टों की नीति तथा बर्ताव से चांगकाईशेक को यह जाहिर हो गया कि कम्यूनिस्ट, जो कई साल पहले से राष्ट्रीय एके की माँग पेश कर रहे थे, वास्तव में निष्कपट-भाव से मिल कर जापानियों से लड़ना चाहते हैं।

इस प्रकार गृह-युद्ध की समाप्ति ने चांगकाईशेक की गवर्नमेण्ट

और चीन के जन-आन्दोलन के बीच मेलजोल का रास्ता तैयार कर दिया।

इससे जापान बहुत चौकन्ना हुआ और पहले उसने चीन के इस एके को आपस में विरोध करा कर तुड़वाना चाहा, पर उसमें विफल होने पर उसने बल प्रयोग का मार्ग अपनाया।

जापान का आक्रमण।

जापानी सेनाओं ने किसी प्रकार की सूचना या युद्ध का एलान किए बग़ैर ही टिड्डी-दल की भाँति चीनियों पर धावा बोल दिया जैसा कि वे पहिले मंचूरिया में कर चुके थे। धन-धान्यपूर्ण प्रदेशों को पादाक्रान्त करते हुए इन निर्दयी बर्बरों ने शीघ्र विजय प्राप्त कर लेने के लिए प्रत्येक दिशा में बड़े भयंकर हमले किए, लेकिन कुशल यह हुई कि चीनी लाल सेना द्वारा दी गई पहली ही करारी हार के कारण नैनकिंग सरकार की फौजों को जापानियों के घेरे में आ जाने से बचने का सुअवसर मिल गया। नैनकिंग की सर्वोत्तम सेनायें यांग्टसी के इलाक़े में एकत्र हुई थीं। जापानी सेनाओं की योजना यह थी कि नैनकिंग पर न केवल शंघाई की ओर से ही बढ़ा जाय वरन् हांगकांग को जीतते हुए नदी के मुहाने की ओर से भी आक्रमण कर दिया जाय। यदि उन्हें इस कार्य में सफलता मिल जाती तो नैनकिंग का पतन शुरू में ही हो जाता और उसके फलस्वरूप चीनी सरकार को जल्दी में पीछे हटने का अवसर भी न रह जाता।

जब जापानियों ने आक्रमण किया तो चीनी सेनाओं की दशा अत्यन्त शोचनीय थी। उस समय चीन में दस लाख सैनिक तो

अवश्य दर्ज थे, लेकिन उसके पास युद्ध सामग्री का अत्यन्त अभाव था और सैनिक शिक्षा का प्रबन्ध तो नहीं के ही बराबर था। लेकिन युद्ध आरम्भ होने के कुछ ही महीनों बाद विकट युद्ध संघर्ष ने चीनियों के जगत्-प्रसिद्ध निकम्मेपन को समूल नष्ट कर दिया और चीन का समस्त राष्ट्र शत्रु की निर्दयता से मोर्चा लेने के लिए एक होकर फ़ैसिस्टवाद के आक्रमण का प्रतिरोध करने के लिए कटिबद्ध हो गया। हालांकि जापानियों के आक्रमण को रोकने के लिये चीनियों को बहुत मूल्य चुकाना पड़ा; किन्तु उन्होंने शत्रु के इस आक्रमण को रोक कर संसार को यह दिखा दिया कि फ़ैसिस्टवादी सर्वथा अजेय नहीं हैं। चीन न केवल आज तक अपनी रक्षा ही करता रहा, बरन् अब वह मिटती हुई धुरी शक्तियों पर प्रहार करने का एक सफल क्षेत्र भी बन गया है।

पर कहीं आशावादिता के चक्कर में पड़कर हम अपने ध्येय से विचलित न हो जाएँ इसलिये हमें जापान की वर्तमान विजयों की ओर ध्यान देना आवश्यक प्रतीत होता है। जापान पहले की भाँति अब एक छोटा द्वीपसमूह ही नहीं रह गया है, उसने अब एक बड़े साम्राज्य की स्थापना कर ली है जिसमें खनिज, खाद्य पदार्थ तथा कच्चे माल का बाहुल्य है। इसके अतिरिक्त जापान के उद्योगधन्धे भी एक दीर्घ काल से जर्मन एकीकरण के ढंग पर संगठित रूप से चल रहे हैं जिनके कारण वह एक लम्बे समय तक युद्ध चला सकता है। दूसरी ओर चीन, जिसके उद्योगधन्धों को निरंतर बमवर्षा के कारण अपार हानि उठानी पड़ी है और जो बाहरी सहायता से एकदम वंचित हो गया है, आखिरकार कहाँ तक अकेला लड़ सकता है? बर्मा सड़क के बंद

हो जाने से उसके यहाँ रसद पहुँचने का अन्तिम साधन भी नष्ट हो गया है और उसकी अवस्था दिनोदिन नाज़ुक होती जा रही है। जैसा कि एक बार श्रीमती चाँगकाईशेक ने कहा था, चीन इस समय केवल अपना अस्थि-पंजर लेकर जापानी सुसज्जित सेनाओं से लोहा ले रहा है। अतः यह प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है कि यदि चीन हिम्मत हार दे तो क्या होगा ?

इसका उत्तर भी स्पष्ट है। चीन यदि पस्तहिम्मत होकर बैठ गया तो जापान को अब तक जो भी लूट का माल हाथ लगा है उसके साथ ही साथ उसे चीन के भी सभी साधन प्राप्त हो जायँगे और उसका नतीजा यह होगा कि एशिया में स्वतंत्रता की आशा की इति हो जायगी। यही नहीं चीनी पराजय का सबसे पहला परिणाम भारत को अपने ऊपर जापानियों के प्रबल आक्रमण के रूप में देखने को मिलेगा। हाँ, यदि चीन युद्ध में डटा रहा तभी एक दिन जापान के पराजित होने की सम्भावना की जा सकती है। लेकिन चीन की हार हो जाने पर इन जापानी फासिस्ट बर्बरों को आगे बढ़ने से रोकना नितान्त असम्भव ही हो जायगा।

चीन का देशद्रोही और प्रतिक्रियावादी समूह जिसने अपने देश को शत्रु के हाथों बेच देने का प्रयत्न किया था आज भी वहाँ मौजूद है, भले ही इस समय उसकी कुछ न चलती हो। लेकिन एक न एक दिन ये लोग अवश्य बढ़ते हुए असंतोष और निराशा से लाभ उठायेंगे और "सम्मानपूर्ण आत्मसमर्पण" द्वारा जापानियों को प्रसन्न करने की चेष्टा करेंगे। कुछ भी हो, यदि दूसरों की भूलों का लाभ उठाकर आज जापानी चीन को हर प्रकार से दबाने में समर्थ

हो गए हैं तो चीनियों से भी इतनी आशा कदापि नहीं की जा सकती कि वे अकेले एक अनिश्चित समय तक जापानियों से लोहा ले सकेंगे।

इसलिए यह बहुत ज़रूरी है कि बर्मा सड़क पर जल्दी से जल्दी मित्र राष्ट्रों का अधिकार जमाया जावे और थके हुए चीन को अधिकाधिक युद्ध सामग्री पहुँचायी जावे, क्योंकि शत्रु से लड़ने के लिए अच्छे हथियारों का अभाव होने पर, केवल वीरता और धैर्य के ही बल पर लड़ाई नहीं जीती जा सकती।

४

पराजितों की दुर्दशा।

नैनकिंग की अग्निपरीक्षा।

शंघाई के पतन हो जाने के बाद जापानी सेनाओं ने राष्ट्रीय सरकार की राजधानी नैनकिंग की ओर, जिसे वे पहले आक्रमण में न जीत सके थे, धावा बोल दिया। उन्हें आशा थी कि नैनकिंग के पतन से समस्त देश उनके आगे नतमस्तक हो जायेगा, किन्तु उनका यह सुखद स्वप्न चीनी सरकार के चुंकिंग चले जाने पर टूट गया। इससे जापानियों को यह भी मालूम हो गया कि उनका मुकाबला डटकर किया जावेगा। चीन इस समय स्वतंत्रता की आशा से जगमगा रहा था। उसे लूट, बलात्कार, अग्निकाण्ड अथवा रक्तपात आदि कोई भी अत्याचार अब आज़ादी के पथ से नहीं डिगा सकता था।

'मैनचेस्टर गार्जियन' पत्र के चीनी सम्वाददाता टिम्परली ने नैनकिंग पर अधिकार करते समय जापानी सेनाओं द्वारा किए गए अत्याचारों पर एक मर्मस्पर्शी पुस्तक लिखी है । लेखक ने साफ़ तौर पर कहा है कि उक्त पुस्तक के लिखने का उद्देश्य जापानियों के प्रति घृणा का प्रचार करना नहीं है। टिम्परली ने तो केवल सच्ची घटनाओं का वर्णन किया है और यह दिखाया है कि जापानी सेनाओं ने चीनी जनता के प्रति क्या व्यवहार किया है। टिम्परली ने असल में यह दिखाने का उद्योग किया है कि युद्ध वास्तव में कितना घृणित व्यापार है और सैनिक वर्ग का इसे इतना महत्त्व देना कितना निरर्थक है ।

फ़ासिस्ट लुटेरों का नैनकिंग के पतन के समय जिस धूमधाम से राजधानी में प्रवेश हुआ उसका वर्णन लेखक ने निम्न पंक्तियों में किया है जिसे पढ़ने से यह ज्ञात होता है कि जापानी अपने वचन पालन का कितना मूल्य समझते हैं ?

१३ दिसम्बर सन् १६३७ ई० को जापानी सेना ने नैनकिंग में प्रवेश किया। शहर के द्वार पर जब सेना पहुँची तो जापानी वायुयानों द्वारा निम्नलिखित परचे फेंके गए :

'जापानी सैनिक भले नागरिकों की भरसक रक्षा करने का प्रयत्न करेंगे जिससे कि वे शान्तिपूर्वक अपने-अपने कार्यों में लगे रहें।'

१० दिसंबर को आक्रमणकारियों के सेनापति जेनरल इवाने मत्सूई ने चीनी जेनरल टॉग-सेंग-ची को नगर के आत्मसमर्पण के लिए चुनौती भेजते हुए कहा था : 'जापानी सैनिक विरोधियों के प्रति कठोर तथा निर्दय रहते हुए भी न लड़नेवालों तथा अविरोधी चीनी सैनिकों के प्रति सहृदय एवं उदार हैं ।' किन्तु ज्यों ही नगर का आत्मसमर्पण

हुआ और चीनी सैनिकों ने अपने हथियार डाल दिए त्योंही जापानी अपना वायदा भूल गए और शहर भर में अन्धेरगर्दी मच गई।

टिम्परली का कहना है :

'शहर में आनेवाले विदेशी यात्रियों ने बताया कि नागरिकों की बहुत-सी लाशें सड़कों पर पड़ी थीं। इनमें से अधिक संख्या उनकी थी जो गोली अथवा संगीनों के शिकार बने हैं। कोई भी आदमी जो भय या घबराहट से भागता मिलता या जिसे जापानी सैनिक अंधेरा होने के बाद पकड़ पाते उसे उसी जगह गोली का निशाना बना देते।'

कितने ही व्यक्ति एक साथ बाँधकर यह कह कर गोली से उड़ा दिए गए कि वे कभी चीनी सैनिक थे। इन बेचारों ने हथियार तो डाल ही दिए थे, इनमें से बहुत से ऐसे भी थे जिन्होंने अपनी वर्दी भी उतार डाली थी।

एक दो नहीं बल्कि हज़ारों की तादाद में छोटे-बड़े, ख़ाली या भरे घर, जिनमें केवल चीनी ही नहीं बल्कि दूसरे देशों के लोग भी रहते थे, एक ओर से लूट लिए गए।

आतंक के इस निरंकुश राज्य में, जिसका वर्णन संभव नहीं है, जापानी फ़ौजी अफ़सरों का यह कहना कि वे तो चीनियों को निर्दय चीनी सरकार से आज़ादी दिलाने के लिए लड़ रहे हैं उनके प्रति अत्यन्त घृणा का भाव उत्पन्न करता था।

नीचे की पंक्तियों में उस रिपोर्ट का सार दिया जाता है जिसे नैनकिंग यूनिवर्सिटी के एक विदेशी अध्यापक ने बाहर भेजा था। नैनकिंग विश्वविद्यालय की इमारत अमेरिका की सम्पत्ति थी, जिसमें लगभग ३०,००० असहाय चीनियों ने शरण ली थी।

'२० दिसम्बर को मुख्य अहाते में आश्रितों के नाम दर्ज कराने का कार्य आरम्भ हुआ। आधे घंटे तक इस प्रकार की धमकी और चाल से भरा हुआ व्याख्यान जापानियों ने लोगों को दिया—'जो भी पहिले सैनिक रह चुके हों,अथवा जिन्होंने फौजी बेगार की हो,वे एक ओर हो जावें। यदि वे स्वेच्छा-पूर्वक ऐसा करेंगे तो उनको अभयदान दिया जायगा और उन्हें काम भी दिया जायगा। लेकिन अगर किसी ने ख़ुशी-ख़ुशी ऐसा न किया और बाद को जाँच करने पर पकड़ा गया तो उसे तुरंत गोली मार दी जावेगी।' इसके फलस्वरूप तीस हज़ार व्यक्तियों में से क़रीब दो-तीन सौ व्यक्ति उस भीड़ से बाहर निकले।

'सायंकाल ५ बजे के क़रीब इन लोगों को सैनिक पुलिस ने दो टुकड़ियों में बाँट दिया और किसी अज्ञात दिशा की ओर ले गए।

'अगले दिन प्रातःकाल एक व्यक्ति, जिसके शरीर पर संगीनों के पाँच घाव थे, यूनिवर्सिटी के अस्पताल में आया। उसने बतलाया कि उसे जापानियों ने सड़क पर जाते हुये पकड़कर चीनी सिपाहियों के झुंड में मिला लिया था। उसने यह भी बतलाया कि उसी शाम को पश्चिम की ओर एक सौ जापानी सैनिकों ने लगभग पाँच सौ बन्दियों को संगीनों से कोंच-कोंचकर मार डाला, और इसी गरोह में वह भी था। सौभाग्य से रात्रि में जब उसकी मूर्छा भंग हुई तब वह किसी तरह रेंग-रेंगकर यहाँ तक पहुँच सका।

'२७ ता० की प्रातःकाल एक और व्यक्ति अस्पताल में आया। उसने बताया कि उन दो तीन सौ अभागे व्यक्तियों का, जिन्हें जापानी पकड़ ले गए थे, वध किया गया और वह ऐसे तीस-चालीस व्यक्तियों में से एक है जो भाग्यवश किसी प्रकार मरने से बच गए।

'जापानी सिपाहियों के लिए किसी प्रकार का विधान नहीं है। वे संदेह होने पर जिसे चाहे पकड़ लेते हैं। हाथों में घट्टे का होना ही इस बात का सबूत है कि अमुक व्यक्ति पहिले सैनिक था और फिर उसके लिए मौत सामने ही खड़ी रहती है। रिक्शा के कुली, बढ़ई तथा अन्य श्रमजीवियों को अक्सर इसी आधार पर पकड़ लिया जाता है।

'एक आदमी की, जो किसी प्रकार नैनकिंग यूनीवर्सिटी के अस्पताल में जीवित पहुँच सका, शकल ही बदल गई थी। उसका सिर जल कर काला हो गया था, आँख तथा कान ग़ायब हो चुके थे और नाक भी आधी के क़रीब ग़ायब थी। वह एक ऐसा वीभत्स दृश्य था जिसे देखकर शैतान भी काँप उठता। उसका कहना था कि वह कई सौ व्यक्तियों के उस समूह में था जिसको पकड़ कर टुकड़ियों में एक साथ बाँधा गया और फिर पेटरोल छिड़क कर आग लगा दी गई। सौभाग्य से वह किनारे पर था जिससे आग केवल उसके सिर को ही जला सकी। उसके बाद एक और व्यक्ति इसी प्रकार उससे भी अधिक जला फुँका अस्पताल में आया।

'इस प्रकार से जो चीनी सैनिक गिरफ़्तार होने पर दूसरी जगह भेजे जाते हैं उनमें से दो चार ही ऐसे होते हैं जो मृत्यु के मुख से बचकर अपनी दर्दनाक कहानी सुनाने को अस्पताल तक पहुँच पाते हैं। क़ैदियों के एक समूह पर मशीनगन चलायी जाती है तो दूसरे गरोह को जापानी सेना के राक्षस घेर कर संगीन या तलवार चलाने की मश्क़ करते हैं।

'यूनिवर्सिटी से ले जाए गए व्यक्तियों को कई टुकड़ियों में बाँट दिया गया था फिर दो-दो करके उनकी कलाइयाँ एक साथ आपस में

तार द्वारा बाँध दी गई थीं। एक बार जब तीस व्यक्ति इस प्रकार नहर पार ले जाये जा रहे थे तो उनमें से ४ या ५ संध्या के झुटपुटे में जान पर खेल कर निकल भागे और एक स्थान में छिप गए। सबेरा होने पर उनमें से एक उस ओर गया तो देखता है कि सैकड़ों लाशें संगीनों से छिदी हुई पड़ी हुई हैं।

'क़ब्रों से इस बात का प्रमाण मिलता है कि नैनकिंग शहर में ही लगभग चालीस हज़ार निहत्थे व्यक्तियों का रक्तपात किया गया जिनमें से ३० फ़ीसदी व्यक्ति ऐसे थे जो कभी भी सैनिक नहीं थे।

'* सुरक्षा केन्द्र के एक कार्यकर्त्ता ने जो किसी प्रकार पूर्वी द्वार से निकलने में समर्थ हुआ था हमें आकर बतलाया कि क़रीब २० मील तक वह जहाँ भी गया उसने सभी गाँव जले हुए देखे और इस हिस्से में उसने एक भी चीनी व्यक्ति अथवा कोई भी पालतू जानवर जीवित नहीं पाया।'

आतंक का राज्य।

मैं यहाँ नाटकीय ढंग से आतंक का वर्णन करने नहीं बैठा हूँ और न मैं जापानी सैनिकवादियों को खास तौर से अन्य साम्राज्यवादियों से अलग करके उनका कोई ख़ास ख़ाका ही खींचना चाहता हूँ, क्योंकि आतंक और सैनिकवाद एक दूसरे में ओत-प्रोत हैं। उनका आपस

---

* नैनकिंग के पतन के अवसर पर कुछ जर्मनों, अंगरेज़ों और अमेरिकनों ने, जो शहर में व्यापार या मिशनरी कार्य के सम्बन्ध में मौजूद थे, निस्सहाय चीनियों को पनाह देने के लिये एक सुरक्षा-केन्द्र क़ायम कर लिया था।

में चोली दामन का साथ है। भले ही कोई पक्षपाती इतिहासकार फ़ासिस्टवाद की प्राथमिक विजयों का बढ़ चढ़ कर वर्णन कर ले अथवा रक्तपिपासु हिटलर को 'महान्' की पदवी तक दे डाले, किन्तु सच तो यह है कि ख़ून और आँसुओं से भीगी हुई उन सैकड़ों करुण कहानियों और दुःख गाथाओं के आगे सारी फ़ौजी तड़क भड़क और विजय की कथाएँ फीकी पड़ जाती हैं।

उन लोगों के लिए आप किन शब्दों का प्रयोग करेंगे जो अपनी सभ्यता, महानता, कला और संस्कृति पर गर्व करके भीषण सामुहिक रक्तपात का दुःसाहस करते हैं? भविष्य के इतिहासकार वर्तमान युग के बारे में क्या कहेंगे जब कि मानवता का इतना पतन हो गया है कि छोटे-छोटे बच्चों को ऊपर उछाल कर उनको संगीन से छेद लिया जाता है, सैकड़ों की संख्या में युद्धबन्दियों की आँखों में पट्टी बाँधकर और एक पंक्ति में खुली हुई क़ब्र के मुँह पर खड़ा करके उन पर संगीन चलाने का अभ्यास कराया जाता है और सहस्रों, स्त्री-पुरुषों और बच्चों को एक साथ मकानों में बंद करके विषाक्त गैसों द्वारा उनकी जीवन लीला समाप्त कर दी जाती है।

मैं पाठकों के सम्मुख ऐसे दुखद एवं शोकपूर्ण घटनाओं का वर्णन करने की क्षमा चाहता हूँ पर यह तो संसार को बताना ही पड़ेगा कि फ़ासिस्टवाद का असली स्वरूप क्या है? भूतकाल के बर्बरों के नृशंसतापूर्ण कारनामे आज इतिहास के पृष्ठों के नीचे दब गए हैं और उनकी बीती हुई कथाओं को समय ने बहुत कुछ छिपा दिया है, किन्तु आज फ़ासिज़्म हमारी आँखों के समक्ष मनुष्य की लोलुपता और बर्बरता का प्रतीक बनकर जो पाशविक चित्र उपस्थित

कर रहा है उनकी ओर से आँख फेर लेने का साहस क्या हममें से किसी में है !

हमें इस कलुषित फ़ैसिस्टवाद को समझने में ज़रा भी भूल न करनी चाहिए। हमें सभ्यता की रक्षा का नक़ाब पहने हुए इन शैतानों के, उनके प्रोपगैण्डा के चक्कर में पड़कर, असली स्वरूप को न भूल जाना चाहिए। हम लोग युद्धक्षेत्र से दूर एवं सुरक्षित स्थान में बैठकर जब रेडियो पर फ़ैसिस्ट प्रचारकों की धोखे में डालनेवाली अपीलों और प्रभाव डालनेवाली दलीलों को सुनते हैं तो क्या हमें यह भी कभी ख़्याल आता है कि इसी समय पराजित देशों में हज़ारों निरपराध व्यक्तियों को हाथ पैर बाँधकर ज़िंदा जलाया जाता होगा, सैकड़ों स्त्रियों पर उनके पति अथवा अन्य सम्बन्धियों के सम्मुख ही बलात्कार करके उनकी इज़्ज़त लूटी जाती होगी, अबलाओं के अंग क्षत-विक्षत किए जाते होंगे, और छोटे-छोटे दुधमुँहे बच्चों को उनके माता-पिता के सम्मुख ही तड़पा-तड़पाकर मारा जाता होगा। यह है उन राक्षसों के शासन की तस्वीर का दूसरा पहलू जो हमें रेडियो पर आज़ादी दिलाने की प्रतिज्ञा करते हैं।

इन सभी बर्बर लुटेरों तथा ख़ूनियों ने, जो आज फ़ैसिस्टवाद के अग्रणी कार्यकर्ता हैं, शान्तिप्रिय और निरपराध देशों में ख़ूब जी खोलकर अत्याचार किए हैं। सोवियट रूस के अधिकृत प्रदेशों में जर्मनों ने सहस्रों की संख्या में गाँव के गाँव फूँक दिए हैं तथा अनेकों बड़े-बड़े शहरों को श्मशान तुल्य बना दिया है। अंतर्राष्ट्रीय नियमों की सर्वप्रकार से अवहेलना करके इन लोगों ने लाल सैनिकों को तरह-तरह की यातनाओं के बाद तड़पाकर मारा गया है। उनकी आँखें

निकाल ली गई, उनकी बोटी-बोटी काटी गई, उनको ज़िन्दा जलाया गया और जीते जी उनके हाथ पैर काट डाले गए। कितनों ही को आरों से ज़िन्दा काटा गया, और बहुतेरे भारी टैंकों के नीचे कुचल कर मार डाले गए।

विश्वविजय की आकांक्षा से प्रभावित होकर नाज़ी उन लोगों को सदा के लिए पृथ्वी से साफ़ कर देना चाहते हैं जिन्हें वे नीची जाति के मनुष्य समझते हैं। रूस में उन्होंने हज़ारों दुधमुँहे बच्चों की हत्या की, सैकड़ों माताओं के स्तन काट डाले, और अनेकों गर्भवती स्त्रियों के उदर चीर डाले।

रूस में नाज़ियों द्वारा किए हुए अत्याचारों का विश्वस्त वर्णन पढ़ने से हमारी आँखों के सामने एक भयानक चित्र आ जाता है। यूक्रेन प्रदेश के मरीनी नामक छोटे से नगर में जर्मन फ़ासिस्टों ने एक नृशंस कार्य किया। उन्होंने १२९ नागरिकों को एक कारख़ाने के अहाते में बंद किया और उन बंदियों के सामने ही उनकी सन्तानों को लाकर बंदियों को गोली से उड़ाने की तैयारी करने लगे।

पहले न तो माता-पिता और न बच्चे ही इस पर विश्वास करते थे कि बच्चों के सामने ही उनके मा बाप मार डाले जावेंगे। वे तो यह समझते थे कि जर्मन सैनिक यह सब उनको डराने-धमकाने के लिए कर रहे हैं। उनका ख़याल था कि इसके बाद वे उनको कहीं दूसरी जगह ले जाकर क़ैद कर देंगे। किन्तु एक अफ़सर के इशारा करने पर मा बापों के समूह पर मशीनगनें चलने लगीं और बच्चे भय से चीत्कार कर उठे। चारो ओर की भूमि रक्तरंजित हो उठी लेकिन अभी अत्याचारों की समाप्ति न हुई थी। फ़ासिस्ट ज़ालिमों की रक्त-

पिपासा इतने से भला कैसे शान्त होती। जब सब मा बाप मार डाले गए तो उनके बच्चों को पकड़कर उनके माता-पिताओं के साथ क़ब्र में ज़िन्दा ही दफ़ना दिया गया।

गदयाच तथा ज़ेनकोवो नाम के नगरों में भी नाज़ियों ने ऐसा ही ज़ुल्म किया। क़ब्रों में ज़िन्दा ही ढकेले जाते समय मासूम बच्चों के मुख से केवल 'अम्मा' या 'दादा' का शब्द निकला और फिर बेचारे सदा के लिए शान्त हो गए। कहीं-कहीं दम घुटते हुए बच्चों के नन्हें हाथ मिट्टी हटाने के विफल प्रयत्न में बाहर निकले दिखाई पड़े।

इन पैशाचिक कृत्यों का आधार हिटलर द्वारा जर्मन सैनिकों को दिया गया निम्नलिखित आदेश है—

'अन्य जातियों की जनसंख्या घटाने के लिए एक नई नीति बरतनी पड़ेगी, क्योंकि कीटाणुओं की भाँति बढ़नेवाले इन हीन जाति के लोगों का समूल नाश करने में किसी को भला क्या आपत्ति हो सकती है।'

जर्मन हाईकमान्ड की आज्ञा की कुछ असल प्रतियाँ लाल सेना को मिली हैं, जिनमें लिखा है : 'हत्या करो ! हत्या करो ! इसकी ज़िम्मेदारी तुम्हारी नहीं मेरी है, हत्या करो !!

—गोरिंग।'

'जर्मन सैनिकों में निर्दयता की भावना कूट-कूटकर भरी जानी चाहिए। किसी भी आबाल, वृद्ध, वनिता के प्रति तनिक भी सहृदयता न दिखाना चाहिए।'—जर्मन सेना प्रचार विभाग के सभी अध्यक्षों को यह हुक्म भेजा गया था।

निम्नलिखित पंक्तियों में एक लाल सैनिक की पत्नी की दुखद राम-

कहानी दी जाती है जिसे जर्मनों ने उसके बच्चों सहित गोली से घायल करके तड़प तड़प कर मरने के लिए छोड़ दिया था।

'२६ नवम्बर सन् १६४१ ई० को मैं अपने दो बच्चों सहित केर्च की जेल में पकड़ कर भेज दी गई। उस समय मैं गर्भवती थी और चलने फिरने में अशक्त थी। एकाएक कुछ जर्मन सैनिक मेरे घर में आए। उन्होंने मेरी हालत देखी लेकिन उनके जी में मेरी अवस्था की रत्ती भर भी चिन्ता न थी। ठोकरें मार कर उन्होंने मुझे कमरे से बाहर निकाला और घसीट कर कोठे से नीचे लाए। फिर मुझे एक गाड़ी पर लाद दिया। मेरे दोनों बच्चे भी मेरे ही ऊपर फेंक दिए गए। आध घंटा बीतते-बीतते मैंने अपने को क़ैदख़ाने की एक सीली और गंदी कोठरी में पाया, जहाँ पर पहले ही से लगभग ३० व्यक्ति मौजूद थे।

उसी क़ैदख़ाने में मेरे बच्चा हुआ। जब एक दूसरी कोठरी के पड़ोसी बंदी ने मुझे सहायता पहुँचाने की इच्छा प्रकट की तो जर्मन सन्तरी ने चिल्लाकर कहा—'चुप रहो, नहीं तो गोली मार दूँगा।'

'इस क़ैदख़ाने में नौ दिन तक मुझे केवल खीरे का अचार दिया गया और मेरे बच्चों को सड़े हुए आलू। प्यास से हम लोगों का गला सूखा रहता था और उस समय मेरा कलेजा मुँह को आ जाता था जब मैं निरीह बालकों को संतरी के सामने पानी के लिए गिड़गिड़ाते देखती थी। उन प्यास से छटपटाते बच्चों को हर बार पानी की जगह जर्मन संतरी का यही क्रूर उत्तर मिलता, 'तुम्हें अधिक तो जीना नहीं, पानी के बिना ही रहो।

'नवें दिन मुझसे, अपने ऊपर के कपड़े उतार कर, अपने बच्चों

सहित अहाते में चलने के लिए कहा गया । मेरे इस प्रश्न पर कि मुझे कहाँ ले जाया जा रहा है, उस जर्मन सैनिक ने मेरे पेट पर एक ठोकर मारी । मेरे साथ कुछ और स्त्रियाँ भी अपने बच्चों सहित बाहर जमा की गईं । वे सब भी नंगे पैरों और केवल अंदर वाले कपड़े पहने बरफ़ पर खड़ी थीं । हमें बन्दूक़ के कुन्दों से एक लारी में ठेल दिया गया और फिर कहा गया कि हम घुटनों के बल बैठें और अपने सिरों को ऊपर न उठावें । इसी अवस्था में वे हमें नगर के बाहर ले गये जहाँ एक बहुत बड़ा गड्ढा खुदा हुआ था ।

'जब हमें उस गड्ढे के किनारे पर एक पंक्ति में खड़ा होने को कहा गया तब मेरे धैर्य का बाँध टूट गया । मैंने अपने बच्चों को छाती से चिपटाकर जर्मन सैनिकों की ओर चिल्लाते हुए कहा, 'दुष्टो ! गोली चलाओ ! कभी तुम्हारा भी यही हाल होगा ।' दनादन गोलियाँ छूटीं और एक गोली मेरे बाएँ कन्धे को चीरती हुई गर्दन में घुस गई । मैं गड्ढे में गिर गई । साथ ही साथ मेरे ऊपर दो मरी हुई स्त्रियों के शव आ गिरे । मैं मूर्छित हो गयी ।

'थोड़ी देर बाद जब मेरी मूर्छा टूटी तो मैंने अपने दोनों बच्चों को बग़ल में मरा हुआ पाया । मुझे इतना दुख हुआ कि मैं फिर बेहोश हो गई । सायंकाल बीत जाने पर कहीं जाकर मुझे होश हुआ । मैंने अपने मरे हुए बच्चों को आख़ीरी बार प्यार किया और उन मरी हुई स्त्रियों की लाशों के नीचे दबी हुई अपनी टाँगों को निकाला । फिर किसी प्रकार घिसटते हुए मैं पास के एक गाँव में जा पहुँची ।'

लाडी नामक एक रूसी गाँव में इन राक्षसों ने स्कूल की तेरह लड़कियों की इज़्ज़त ली और फिर उन्हें गोली से मार दिया । एक

दूसरे गाँव में उन्होंने छः नवयुवतियों को पकड़कर उनके कपड़े फाड़ डाले, उनके स्तनों को जड़ से काट दिया और उनकी आँखें निकाल लीं।

नीचे, नीना यारोश नामक एक अस्पताल की नर्स की आपबीती कहानी का वर्णन दिया जाता है, जिसने स्वयं अपनी आँखों से जर्मन अत्याचारियों के कुकृत्यों को देखा और ख़ुद भी सहा।

'मैं जर्मनों के हाथों २१ दिन रही। पराजित हिस्से में जो निरंकुशताएँ हो रही हैं उनके वर्णन के लिए मुझे ढूँढ़ने से भी शब्द नहीं मिलते। मैं अब अपने शेष जीवन के लिये जर्मनों द्वारा अपंग बना दी गई हूँ और उनकी पाशविक कला-कृति का एक नमूना हूँ। मेरे स्तन नहीं रहे; उन्हें लाल लाल लोहे के छड़ों से जला डाला गया। मेरे बाल नहीं रहे: जर्मनों ने उनमें आग लगा दी। मेरी उँगलियाँ भी शेष नहीं हैं क्योंकि वे भी उन्हीं राक्षसों द्वारा काट दी गईं। लेकिन मैं यह सब बातें अपने लिए न कह कर लूडाप्रैटोवा नामक एक १५ वर्षीया लड़की के लिए कह रही हूँ, क्योंकि मुझे संसार को यह बताना है कि उस बेचारी पर कैसे-कैसे अत्याचार किए गए। यह एक भोली होनहार और तीव्र बुद्धि की लड़की थी। उससे स्कूल के सारे बच्चे प्रेम रखते थे। वह पढ़ने में बहुत तेज़ थी और स्कूल में अच्छी उन्नति कर रही थी। युद्ध शुरू होने के अगले ही दिन उसकी माता ने लाल सेना में नौकरी कर ली और इन फ़ासिस्ट बर्बरों ने यह जानने के लिए कि उसकी मा कहाँ है, लूडा की बहुत ताड़ना की। उन्होंने स्कूल के सब बच्चों को अहाते में बाहर जमा किया और उनके सामने ही उन्होंने लूडा को ख़ूब पीटा। उसके बाद वहीं सब

के सामने ही लूडा की इज़्ज़त ली गई और फिर उसे जीवित ही जला दिया गया। उसकी जान निकल जाने पर भी जर्मन पशुओं को शान्ति नहीं मिली और उन्होंने उसकी आधी जली हुई लाश को बग़ीचे वाली बाहर की झोपड़ी के पास, जहाँ वह बैठकर सदैव काम करना और पढ़ना पसंद करती थी, एक पेड़ पर लटका दिया।'

जापानियों के भाई बिरादरी जर्मन नाजियों के हत्याकाण्ड की यह झाँकी दिखाकर हम पाठकों को फिर जापानियों की ओर लाते हैं, जो इस पुस्तक का मुख्य विषय है।

जापानियों द्वारा किए गए अत्याचारों का वर्णन करते हुए टिम्परली आँखों देखी घटनाओं के आधार पर आगे लिखता है :

'जानकार जर्मन स्वयं जापानियों के इन बलात्कारों की संख्या बीस हज़ार के लगभग आँकते हैं। शायद हम इस बर्बरता एवं नृशंसता की कल्पना भी नहीं कर सकते। ग्यारह वर्षीया कन्याओं से लेकर सत्तावन वर्ष तक की बुढ़ियों के साथ केवल विश्वविद्यालय की इमारतों में बलात्कार किया गया। क़ब्रस्तान के अहाते में १७ सैनिकों ने एक ही स्त्री के साथ दिन दहाड़े बलात्कार किया। इतना ही क्यों असलियत तो यह है कि एक तिहाई के लगभग इस प्रकार के कुकृत्य खुले आम दिन दहाड़े किये गये।

'नगर का एक एक मकान कई कई बार जापानियों द्वारा लूटा गया। नैनकिंग में अंतर्राष्ट्रीय-चावल-गोदाम और सैनिक भाण्डारों के अलावा एक भी स्टोर लुटने से बाकी नहीं बचा। बहुत सी दूकानें एक तरफ़ से लूटी जाने के बाद जला दी गई और उनका सामान फ़ौज के सिपाही लारियों से ढो ले गए।

'जब पचास हज़ार सैनिकों को नैनकिंग में खुलेआम लूट मार के लिए छोड़ दिया गया था तो फ़ौजी पुलिस की संख्या केवल १७ थी और उनमें से भी लगातार कई दिन तक एक की भी शकल नहीं दिखाई पड़ी। उसके बाद हुआ यह कि सैनिकों को पुलिस के सिपाहियों का बिल्ला दे दिया गया जो दूसरे शब्दों में उनका पुरस्कार और उनके अत्याचारों को छिपाने का एक परदा बन गया। हमने स्वयं देखा कि कई व्यक्ति खुले आम बलात्कार करते हुए पकड़े गए लेकिन उन्हें सिर्फ़ डाट डपट कर छोड़ दिया गया। यूनिवर्सिटी पर सैनिक अफ़सरों का एक दल स्वयं मोटर लारियाँ लिए हुए आया। उसने हमारे चौकीदार को संगीन से भोंक भोंक कर मार डाला और तीन शरणागत स्त्रियों के साथ जबरन बलात्कार करके एक को अपने साथ लेकर चलता बना।'

नैनकिंग के अतिरिक्त भी।

नैनकिंग में विदेशियों के पर्याप्त संख्या में होने के कारण जापानियों द्वारा किए गए अत्याचारों का वर्णन काफ़ी विशद रूप में मिलता है किन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिए कि यह बातें केवल राजधानी में ही हुईं। असलियत तो यह है कि जहाँ कहीं भी जापानी पहुँचे उन्होंने इससे भी ज़्यादा विध्वंसक कुकृत्य किए। आक्रमणकारियों के हाथ में जो भी चीनी नगर पड़ा उनकी ऐसी ही दुर्गति की गई। कोई भी जापानियों के अत्याचारों से बचने में समर्थ नहीं हो सका।

फ़ैसिस्टों के आक्रमण करने का तरीक़ा प्रायः यह होता है

कि वे पहले हवाई जहाज़ों द्वारा बड़े शहरों पर बुरी तरह बम गिराते हैं, जिससे निरीह जनता पस्त हिम्मत हो जावे और उसका धैर्य टूट जावे। इसकी आज़माइश सबसे पहले जर्मन वायुयान सेना ने फ्रैंको-बग़ावत के अवसर पर स्पेन के ग्योर्निका नामक स्थान पर की, और जिसके फलस्वरूप बास्क जाति के उस ऐतिहासिक नगर को बमों से एकदम खण्डहर बना दिया गया। तब से आज तक संसार के बीसों मशहूर शहरों का यही हश्र हुआ है, जिनके खंडहर आज फासिस्ट बर्बरता के साक्षी हैं।

कुछ ख़ास ख़ास घटनाएँ।

आगे मैं कुछ और घटनाएँ टिम्परली की पुस्तक से दे रहा हूँ, लेकिन यह बात न भूलनी चाहिए कि इन वर्णनों को सुरक्षा क्षेत्र की रिपोर्टों के आधार पर लिखा गया है, इनसे भी बढ़कर ज़ुल्म नैनकिंग के दूसरे भागों में अवश्य हुये होंगे पर उनका हाल मिलना असम्भव ही सा है।

१५ दिसंबर—जापानी सैनिक हांगकांग नाम की सड़क पर के एक घर में घुसे। वहाँ उन्होंने एक नौजवान स्त्री पर जबरन बलात्कार किया और तीन स्त्रियों को उठा ले गए। जब उनमें से दो के पति सैनिकों के पीछे दौड़े तो उन्हें गोली मार दी गई।

१६ दिसंबर—सात जापानी सैनिक यूनिवर्सिटी में घुस आये और सात शरणार्थी चीनी स्त्रियों को पकड़ ले गए। उनमें से तीन के साथ वहीं पर कई बार बलात्कार किया गया।

१८ दिसंबर—आइ-हो सड़क पर नं० १२ के मकान में शरणार्थी मर्द और औरतें रहती थीं। जापानी सिपाहियों ने इन पनाह लेनेवाले

मर्दों को भगा दिया और फिर लड़कियों की इज़्ज़त लूट ली। एक चाय घर के मालिक की १७ वर्षीय लड़की से सात जापानी सिपाहियों ने क्रमशः बलात्कार किया जिसके फलस्वरूप वह अगले दिन मर ही गई।

३ जनवरी—एक स्त्री को, जो अन्य पाँच साथिनों के साथ नं० ६ चियेन इंग ह्स्यांग में रहती थी, जापानी सैनिक अफ़सरों के कपड़े धोने के बहाने ले गये। जब यूनिवर्सिटी के अस्पताल में कुछ दिन बाद वह वापस आई तो उसने कहा कि बारिकों में स्त्रियाँ दिन भर कपड़े धोती थीं और रात में जापानी सिपाहियों की पैशाचिक इच्छापूर्ति का साधन बनती थीं। अधेड़ स्त्रियों को तो १५-२० बार ही जापानी सिपाहियों की काम-वासना तृप्त हो जाने पर छुट्टी मिल जाती थी लेकिन युवतियों को तो रात्रि में ४०-४० बार तक भ्रष्ट किया जाता था। उसने कहा कि एक दिन दो सैनिक मुझे बीमार पा कर एक खण्डहर में पकड़ ले गए। उन्होंने मेरे शरीर पर संगीन के १० वार किए और मरा जान छोड़कर चले गए।

२५ जनवरी—एक और चीनी स्त्री यूनिवर्सिटी के अस्पताल में आई जिसका पति १३ दिसम्बर को जापानी सैनिकों द्वारा पकड़ लिया गया था। वह स्वयं भी जापानियों की क़ैदी की अवस्था में अब तक रखी गई थी। उसके साथ प्रति दिन जापानी सिपाही सात से दस बार तक अपनी काम-वासना की पूर्ति करते थे। जब उसके तीनों प्रकार की गुप्त बीमारियाँ भयंकर रूप में प्रकट हो गईं तो उसको, उसकी शारीरिक दुरवस्था के कारण छोड़ दिया गया।

३० जनवरी—एक ६१ वर्ष की वृद्धा जब अपने हंसीमेन नामक स्थान के निकटवाले घर पर गई तो रात को जापानी सैनिकों का एक

गरोह उसके यहाँ आया और उसके साथ अपनी कुचेष्टाएँ प्रकट करने लगा और उसके यह कहने पर कि वह बहुत काफ़ी बूढ़ी हो चुकी है सैनिकों का गरोह लौट तो गया, लेकिन चलते चलाते उनमें से एक ने उसके गुप्त अंग में छड़ी डाल दी।

५ फ़रवरी—एक जापानी सैनिक मि० चेन के घर आया और उन से एक लड़की की माँग पेश की। चूँकि वहाँ पर कोई लड़की न थी, इसलिए उसने एक १७-१८ वर्ष के नौजवान को पकड़ लिया और उसके साथ अप्राकृतिक व्यभिचार किया।

५ फ़रवरी—६० वर्षों से अधिक आयुवाली चेन नामक वृद्धा स्त्री के पास ३ जापानी सैनिक आए। उनमें से जब दो ने उसके साथ अपनी कामलिप्सा पूर्ण की तब तीसरा बाहर पहरे पर बैठा रहा। एक सैनिक ने उससे अपनी गुप्तेन्द्रिय को मुख द्वारा साफ़ करने का घृणित प्रस्ताव किया। उसने एक दो साल के पोते को चिल्लाने के अपराध में दो बार संगीन से मार कर घायल कर दिया गया।

हत्या की होड़।

एक प्रसिद्ध कहानी यह है कि दो जापानी सैनिकों, नोडा तथा मूकाई, ने आपस में एक हज़ार व्यक्तियों की हत्या की शर्त बदी। पहले उन्होंने इस बात पर शर्त लगाई कि कौन १०० चीनियों को पहले मारता है, किन्तु नोडा को यह काम इतना अधिक सरल तथा रुचिकर प्रतीत हुआ कि शीघ्र ही १०० से एक हज़ार व्यक्तियों के वध की सीमा निर्धारित कर दी गयी। नोडा का कहना है, कि उत्तरी चीन में हत्या का यह खेल, वध किए जानेवालों का पीछा करने के कारण,

कुछ कम मनोरंजक था । लेकिन मध्य चीन में यह बात नहीं थी वहाँ तो हत्याओं पर हत्याएँ करना ज़रा भी मुश्किल न था। नोडा का कथन है कि, 'नैनकिंग नगर में प्रवेश करने से पहले मैंने १०५ व्यक्तियों की हत्या की थी। उसके बाद युद्ध की भगदड़ में २५३ व्यक्ति और मेरे हाथों मरे। इनको मौत के घाट उतार देना बहुत ही सुगम था लेकिन यदि कोई पूर्णतया तृप्त होना चाहे तो उसे इससे भी अधिक हत्याएँ करनी होंगी । फिर मैंने तो मूकाई के साथ १००० चीनियों की हत्याएँ करने की होड़ की है ।'

नोडा ने ऊपर के वर्णन की समाप्ति एक उससे भी अधिक उत्साह पूर्ण योजना द्वारा की । वह अपनी इन हत्याओं के क्षेत्र को कुनलुन पर्वत श्रेणी के दूसरी ओर सिन्धु नदी के पार पामीर प्रदेश तक फैलाना चाहता था।

संगठित संहार।

जैसा पहले कहा जा चुका है जापान चीन के बढ़ते हुए उद्योग धंधों से शंकित था। उसने सोचा कि यदि उद्योग धंधों की इस बढ़ती को नष्ट कर दिया जाय तो चीन में पुराने सामंतवाद की पुनः स्थापना की जा जाकती है । इसमें जापान का दुहरा लोभ था। पहला यह कि घरेलू झगड़े और भेदभाव बने रहने के कारण आक्रमणकारी जापान की क़ूवत बढ़ती और उसके प्रमुत्व में बाधा न पड़ती, और दूसरा यह कि चीन में ज़मींदारों का राज्य रहने से जापानियों को चीन पर असर जमाने में अड़चनों का सामना न करना पड़ता। ज़मींदारों का यह तबक़ा कभी जापान के ख़िलाफ़ सर

ही न उठा सकता, इसलिए जापानी सेनाध्यक्षों ने अपनी निश्चित नीति का आधार सैनिक सफलताओं के साथ ही साथ चीन की उत्पादन शक्ति का संहार करना भी बनाया।

केवल शंघाई की अंतर्राष्ट्रीय बस्ती के उत्तरी तथा पूर्वी हिस्सों में ही ६०५ फैक्टरी तथा कारख़ानों को आग लगा कर नष्ट कर डाला गया। इतना ही नहीं, इसके अलावा लगभग एक हज़ार और कल कारख़ानों को बुरी तरह से नष्ट किया गया। शंघाई की इन हानियों में तो हम चीनी उद्योग धन्धों को नष्ट करने की जापानी स्कीम का बहुत छोटा स्वरूप ही देख सकेंगे क्योंकि चीन के बड़े बड़े औद्योगिक कारख़ाने तो शंघाई की बस्ती के बाहर चीनी क्षेत्रों में ही थे। चेपई का क्षेत्र, जो उद्योग का एक केन्द्र था, सन् १९३२ में ही बम वर्षा से राख का ढेर बना दिया गया था।

शंघाई का पुराना चीनी नगर नानटो जहाँ से चीनी सैनिक एकदम निकल आए थे, एक महत्त्वपूर्ण औद्योगिक केन्द्र था। उसमें कम से कम ४० बार आग लगी और वहाँ भी अस्सी फ़ीसदी से भी ज़्यादा इमारतें इस बुरी तरह मिसमार की गईं कि उनकी मरम्मत होना असंभव है। सौ दो सौ नहीं हज़ारों दूकानें तथा मकान एकदम ईंटों के ढेर बना दिए गए, और एक दूसरे औद्योगिक क्षेत्र पूटंग में भी इसी प्रकार की बरबादी की गई, जिसमें अमेरिकन मशीनों से युक्त एक बहुत बड़ा स्पिरिट बनाने वाला कारख़ाना भी था।

शंघाई के आस पास १०० मील के घेरे में क़रीब २०-२१

बड़े-बड़े शहर हैं जिनकी जनसंख्या ५० लाख से कम नहीं है। इन सब को युद्ध के कारण इतना नुकसान उठाना पड़ा है कि वे सब वीरान से हो गए हैं । ऐसी दशा में छोटे-छोटे कस्बों का क्या हाल हुआ होगा यह सोचना आसान नहीं है । मिसाल के लिए वुसीह नामक औद्योगिक नगर को ही ले लीजिए, जिसकी जनसंख्या नौ लाख थी। इस शहर के सभी कारखानों को बहुत नुक़सान पहुँचा और जापानी बमवर्षा ने इसे ज़मींदोज़ करके ही छोड़ा।

कार्शिग नाम के दूसरे नगर की भी यही दशा हुई और वहाँ एक भी व्यक्ति न रह गया । दो लाख की जनसंख्यावाले सुक्यांग नामक नगर का तो नामोनिशान भी बाक़ी न रह गया और सूचाऊ नामक नगर की जन संख्या जापानियों के वहाँ पहुँचते पहुँचते ३५०००० से घटकर केवल ५०० रह गई।

टूटी फूटी अथवा बची हुई सभी प्रकार की मशीनें, बेकार लोहा और अन्य धातुएँ जो भी इन खड़हरों या ईंटों के ढेरों से निकाली जा सकीं, जहाज़ों में लादकर जापान पहुँचा दी गईं ।

५

फ़ासिज़्म और जापान ।

फ़ासिज़्म की उत्पत्ति ।

आजकल प्रायः यह देखा जाता है कि फ़ासिज़्म की उत्पत्ति का कारण जानने के लिए हम, गहराई तक न जाकर, सरसरी तौर पर ही उसकी व्याख्या कर देते हैं। कुछ लोग तो इस अनर्थकारी प्रणाली की व्याख्या उन साम्राज्यवादियों की दलीलों के अनुसार करके ही संतोष कर लेते हैं, जो अभी कलतक फ़ासिस्टों के पृष्ठपोषक तथा सहायक थे।

वास्तव में बात यह नहीं हुई कि जर्मनी के कुछ धूर्त अवसरवादी शैतानों ने अपने देश की प्रजातंत्रवादी सरकार के विरुद्ध षड्यंत्र रचने की ठानी, और अपने देशवासियों की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए ऐसे आकर्षक सिद्धान्तों की रचना कर डाली कि जिसके द्वारा

सहस्रों नवयुवक उनकी ओर खिंचे चले आए। इसके बाद इन नवयुवकों को उन्होंने नाज़ी फौजों में भरती करके अपना एक संगठित दल बना लिया, और जिस शासनतंत्र को नष्ट करने का उन्होंने निश्चय किया था उसकी ओर से कोई बाधा पड़ती न देखकर वे देश के बूढ़े प्रेसीडेन्ट के पास पहुँचे और उन्होंने उसके सामने अपने विचार इस ख़ूबी से रखे तथा देश की शोचनीय दशा का ऐसा चित्र खींचा कि वह तुरंत ही उन्हें समस्त शासन-सूत्र सौंपने पर राजी हो गया। और यहाँ तक सफल होने के बाद उन्होंने अपनी सारी शक्ति एक विलक्षण एवं अत्यन्त भयंकर सैनिक संगठन के निर्माण में लगाना शुरू कर दिया।

इसके उपरान्त जब संसार के एक कोने में मनुष्य की सभ्यता और संस्कृति का समूल नाश करने का एक शैतानी षड्यंत्र चल रहा था, संसार के अन्य शान्तिप्रिय प्रजातंत्र देश अपने मधुर सपने में मस्त रहे। उनकी इस निद्रा और बेखबरी से इस शैतानी षड्यन्त्र को फूलने फलने का अवसर मिल गया और अब वह नाज़ी दैत्य भीमकाय होकर उन्हें निगल जाने की चेष्टा में लग गया है—और उस पर तुर्रा यह कि आज पुराने साम्राज्यवादी देशों ने देवता की नक़ाब पहन ली है और वे संसार की शान्तिप्रिय जनता के सामने खड़े होकर 'विश्व-शान्ति' स्थापना के लिए सहयोग की अपील कर रहे हैं।

लेकिन संसार अब भुलावे में नहीं आ सकता। विश्व का स्वतंत्र-प्रिय जन समुदाय एक न एक दिन इस फ़ासिस्ट दानव का ही संहार नहीं कर देगा, बल्कि वह अब भविष्य में ऐसी परिस्थिति भी

न उत्पन्न होने देगा जिसमें फिर हिटलर, मुसोलीनी, फ्रान्को तथा टोजो जैसे अत्याचारियों को पनपने का अवसर मिले।

फ़ासिज़्म की व्याख्या करना इतना आसान नहीं है जितना वह मामूली तौर पर ज़ाहिर होता है। मिसाल की तौर पर हम जर्मनी और इटली को ही लेते हैं। क्या इसका कारण ढूँढ़ना आसान है कि इन दोनों देशों ने क्यों फासिज़्म से प्रभावित होकर युद्ध पर कमर कस ली? हमें फासिज़्म की बढ़ती के असली कारणों के जानने के लिए उसका सूक्ष्म निरीक्षण करना होगा।

दर असल फासिज़्म की उत्पत्ति इटली में हुई किन्तु इटली जैसा उद्योगधन्धों में पिछड़ा हुआ देश अधिक काल तक इस 'वाद' का नेता न रह सका, लेकिन जब वह कल कारखानों से सम्पन्न जर्मनी में फैला तो मुसोलीनी के इस नमूने की वहाँ काफ़ी उन्नति करके उसे एक बृहत् रूप दे दिया गया।

जर्मनी में नाज़ीवाद।

जर्मनी के सैनिकों, नाविकों तथा मज़दूरों ने, जिनके कारण ही पिछली लड़ाई ख़तम हो सकी थी, बाल्टिक सागर के बन्दरगाहों में सोवियट सभाएँ स्थापित कीं और वहाँ लाल झण्डा फहराने लगा। दक्षिणी जर्मनी, बवेरिया, में भी सोवियट सरकार की स्थापना हुई और बर्लिन में भी क्रान्ति का श्रीगणेश हुआ।

किन्तु सोशलिस्टों ने राज्याधिकार पर क़ब्ज़ा कर लेने पर भी पार्लमेंटरी नीति को त्याग देने से इन्कार कर दिया। उन्होंने मज़दूरों के लाभ की ओर कोई क़दम न उठाया, उलटे कम्यूनिस्टों के विरुद्ध एक प्रबल दमन शुरू कर दिया। एवर्ट की सरकार ने मजदूरों को

कुचलने के लिए शाही सेनाएँ भेजीं और रोज़ा लक्समबर्ग और कार्ल लीबनेख्ट जैसे प्रसिद्ध नेताओं को बड़ी क्रूरता से मरवा डाला। मज़दूरों की हड़तालों और प्रदर्शनों को हर जगह बड़ी सख्ती से दबाया गया और अनेकों औद्योगिक केन्द्रों में गोलियाँ चलाई गईं। बवेरिया में स्थापित हुई सोवियट रिपब्लिक का तो अगणित मनुष्यों का वध करके समूल नाश कर दिया गया।

यद्यपि कम्यूनिस्ट पार्टी को जर्मनी में हर प्रकार से छिन्न-भिन्न करने का उद्योग किया गया था, पर वह समूल नष्ट न हो सकी। जर्मन कम्यूनिस्ट पार्टी ने फिर से धीरे-धीरे अपना संगठन किया और अपने मेम्बरों की संख्या दसगुनी कर ली। दूसरी ओर सोशलिस्टों की आत्मघाती नीति के कारण पूँजीपतियों को पुनः अपनी सत्ता जमाने का अवसर मिल गया। इतना होने पर भी पूँजीपतियों का वर्ग इस योग्य न हो सका कि वह देश की राजनीति की बागडोर अपने हाथ में ले लेता, क्योंकि पूँजीपति इतने बदनाम हो गए थे कि कोई उनका विश्वास न करता था। इसलिए उन्हें अब अपना मतलब साधने के लिए एक ऐसी लोकप्रिय पार्टी की जरूरत हुई कि जिसकी आड़ में वे अपना स्वार्थ साधन करते।

उधर नाजी पार्टी थोथे सन्मान तथा कर्तव्य के उच्च आदर्शों का राग अलाप रही थी। नाजी वर्साई की सन्धि एवं युद्ध लांछन के रद्द कराने की आवश्यकता बताकर मध्य श्रेणी के निर्धन मनुष्यों को सब्ज बाग़ दिखा रहे थे। इन्होंने कम्यूनिस्टों के कुछ लोकप्रिय नारों को लेकर एक प्रकार के नक़ली राष्ट्रवाद का प्रतिपादन करना आरंभ किया। वास्तव में यह सब कुछ एक गड़बड़झाले के अतिरिक्त कुछ

भी न था, जिसमें उत्कट जातीय अभिमान की मात्रा भरपूर थी।

नाजी प्रगतिवाद के अनुसार जर्मन निवासी संसार-भर के सबसे श्रेष्ठ व्यक्ति हैं और उनके बाद बाकी 'निम्न श्रेणियाँ' आती हैं। नाजियों ने और भी कितने ही आकर्षक नारे गढ़ लिये, जो जनता को फंसाने के लिए काफ़ी थे। ये नारे स्वभावतः मध्यम श्रेणी के उन बेकाम युवकों को अच्छे लगते थे जिनके आगे कोई विशेष कार्यक्रम न था, और जो जातीयता की दुर्भावना से इतने अंधे कर दिए गए थे कि जिस किसी को भी उन्हें अपने देश का शत्रु बताया जाता था वे उसी पर टूटने को तैयार हो जाते थे।

इस समय यही एक ऐसी पार्टी थी जिसकी तलाश कुछ स्वार्थी लोग कर रहे थे, और चूंकि यह पार्टी आकर्षक नारों का राग अलाप रही थी जर्मन पूँजीपतियों ने इसका आश्रय लेना उपयुक्त समझा। हिटलर को भी अपने 'तूफानी सैनिकों' के भरण-पोषण के लिए इस समय धन की बहुत आवश्यकता थी, इसलिये दोनों के स्वार्थ और आवश्यकता ने ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी कि वे शीघ्र ही मैत्री के सूत्र में बंध गए। इस प्रकार पूँजीपतियों तथा सैनिक-वादियों में नाजी सिद्धान्तों के ज़रिये मित्रता का सामंजस्य स्थापित हो गया।

पहले तो नाज़ी कुछ दिन केवल सहयोगी बने रहे, लेकिन बाद को वे सबके नेता बन बैठे जैसा कि स्वाभाविक ही था।

इस प्रकार जर्मनी तथा इटली, या और सभी ऐसे देशों, में फ़ासिज़्म की उत्पत्ति का कारण मज़दूर क्रान्ति को दबाने की आवश्यकता बनी, और प्रतिक्रियावादियों के दल सैनिक कार्य-क्रम के समर्थक हो गए।

जैसे ही नाज़ियों ने राजसत्ता हाथ में ली, इटली की भाँति उन्होंने भी तुरंत मज़दूर वर्ग की संस्थाओं को कुचलना आरम्भ कर दिया। जब वे इसमें सफल हो गए तो उन्होंने एक एक करके अपने अन्य सभी विरोधियों को समाप्त कर दिया।

सामाजिक कोढ़—फ़ासिज़्म !

आक्रमणकारी द्वारा पहुँचायी गयी क्षति का परिणाम इस बात का निर्णय करने में असमर्थ है कि आक्रमणकारी फ़ैसिस्ट हैं अथवा कुछ और, क्योंकि इतिहास सर्वत्र चंगेजखाँ और तैमूर जैसे आक्रमण-कारियों की काली करतूतों से भरा पड़ा है। फासिस्टवाद एक प्रकार का अनोखा सिद्धान्त है जिसका अंतिम लक्ष्य एक विशेष प्रकार की राजनीतिक अवस्था की प्राप्ति है। मैं इस शैतानी सिद्धान्त की विशेष व्याख्या करके पाठकों का अधिक समय न लूँगा। संक्षेप में हम फासिज़्म को सामाजिक कोढ़ कह सकते हैं जो सदियों के एकत्र होने-वाले राजनीतिक विष का परिणाम है। अपनी ही पेचीदगियों से बिगड़ता हुआ पूँजीवाद जनसाधारण के सामाजिक जीवन को अस्त-व्यस्त कर देता है। इसके द्वारा लाखों मज़दूर बेकाम होते चले जाते हैं और असंतोष बढ़ता जाता है। बढ़ती हुई निर्धनता के साथ-ही-साथ कारखानों द्वारा बने हुए मालों की माँग घटती जाती है और बेकारी, बेरोज़गारी और गरीबी बढ़ती जाती है। इस कारण एक विषम परि-स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिसकी विषमता दिन प्रतिदिन बढ़ती जाती है। भूख प्यास का कष्ट तथा बढ़ती हुई गरीबी भविष्य में होने वाली क्रान्ति की अग्नि में आहुति का कार्य करते हैं और साथ ही साथ एक-मात्र क्रान्तिकारी वर्ग "मज़दूर" संघर्ष के लिए तैयार हो जाता है।

दूसरी ओर बैंकों, बड़े-बड़े ट्रस्टों तथा कंपनियों द्वारा पूँजीवाद समस्त जनता की सम्पत्ति को दिन-प्रति-दिन चूसकर केवल इने-गिने व्यक्तियों के हाथ में बेकार पूँजी के रूप में लगातार सौंपता रहता है। यह बेकार पूँजी, जाती नफ़े की लालच और दिन ब दिन गरीबी और बेकारी बढ़ने की वजह से तथा बाजारों में माल की माँग की कमी के कारण, नये उद्योग धन्धों में नहीं लगायी जा सकती। इसका परिणाम सामाजिक जीवन में घोर असंतोष के अतिरिक्त क्या हो सकता है! इस परिस्थिति में अपने को पाकर अनुदारवादी पूँजीपति एक बार पुनः अपनी स्थिति को बचाए रखने की भरपूर चेष्टा करते हैं। एक ओर तो वे प्रगतिशील सत्ताओं को दबाकर भीतरी असंतोष को शांत करने का क्रूर प्रयत्न करते हैं और दूसरी ओर बिगड़ती हुई औद्योगिक दशा को सँभालने के लिए अपने जमा किये हुए चाँदी के टुकड़े निकालते हैं। परन्तु जनता को माल ख़रीदने के लिये रुपया देना व्यापारिक चतुरता नहीं कही जा सकती। अतः परिणाम यह होता है कि पूँजीपतिवर्ग लड़ाई का सामान बनाकर अपना व्यापार ज़िन्दा रखने की कोशिश करता है। इसके लिए उसे जंग का नारा बुलंद करना आवश्यक हो जाता है, और जंग की तैयारी में अपनी पूंजी लगाकर वह भविष्य में मुनाफ़े के रूप में अन्य देशों को जीतकर उनके लूट और शोषण का सुखस्वप्न देखता है।

इस प्रकार फ़ासिज्म नष्ट होने वाले पूँजीवाद का अपने को बचाने का अन्तिम प्रयास कहा जा सकता है। यह प्रतिक्रियावादी निकम्मा तथा सड़ा हुआ सिद्धांत है जिसका उद्देश्य श्रमजीवी जनता को कुचलने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

क्या जापान फ़ैसिस्ट है ?

जैसा कि अभी कहा जा चुका है फ़ैसिज़्म वास्तव में संगठित मज़दूर आन्दोलनों के दबाने का विरोध मात्र है। जापान में केवल संगठित मज़दूर श्रेणी का ही अभाव नहीं है वरन् वहाँ का सब समाज एक-मात्र सामंतवादी साँचे में ढला हुआ है। अतः यदि वास्तव में देखा जाय तो फ़ैसिस्ट शब्द का प्रयोग वर्तमान जापानी समाज के लिए उपयुक्त नहीं कहा जा सकता, किन्तु फिर भी राजनीतिक सिद्धांतों का पृथक्-पृथक् विभाजन करना एक भूल ही है क्योंकि फ़ैसिज़्म पिछड़ी हुई राज्यसत्ताओं द्वारा भी अपनाया जा सकता है, और अपनाया भी गया है। इस प्रकार के अंगीकरण को सैनिक फ़ैसिज़्म कहना ग़लत न होगा क्योंकि जापान ने अपनी फ़ौजी ताक़त फ़ैसिस्ट ढंग पर तैयार की है, और अपनी शासन प्रणाली को फ़ैसिस्ट जामा पहिनाने की हर प्रकार कोशिश की है। इसके साथ ही साथ यह न भूलना चाहिए कि जापान धुरीराष्ट्र के तिगुड्ड का एक सदस्य था। इस समय जब मुसोलिनी अपनी कलाबाज़ियाँ दिखाने के बाद सारी महत्ता खो चुका है जापान ही इस धुरी का दूसरा आसुरी चक्र रह गया है।

देवताओं की संतान !

देश-प्रेम तथा अंधी देश-भक्ति में भेद न देखकर राजनीतिक जगत में काफ़ी उलझन पैदा हो गई है और इससे हानि भी कम नहीं हुई है। देश-प्रेम का अर्थ अपने देश के प्रति प्रेम-भाव है, किन्तु अन्धी-देश-भक्ति के माने हैं 'झगड़ालू-राष्ट्रीयता'

जिसका आधार एक देश की दूसरों के प्रति स्वार्थ-पूर्ण इच्छा है। देश-प्रेम की भावनाओं से मनुष्य के हृदय में अपने देश की सभ्यता और संस्कृति के प्रति प्रेम, श्रद्धा तथा गौरव का प्रादुर्भाव होता है और साथ ही साथ उसमें अन्य लोगों के आचार-विचार, उन्नति, आदि के प्रति सहिष्णुता की भावना उत्पन्न होती है। किन्तु अन्धी देश-भक्ति मनुष्य में ग़लत तरह का स्वजाति अभिमान भरकर उसके हृदय में केवल अन्य जातियों तथा उनकी सभी बातों के प्रति घृणा का संचार करती है। इस अन्धी-देश-भक्ति से ही फ़ैसिज़्म सरीखे सिद्धान्तों की उत्पत्ति होती है, वैज्ञानिक खोजों को तोड़ मरोड़ कर नवीन जातीय सिद्धान्त निकाले जाते हैं, और युद्धप्रिय व्यक्तियों की लालसाओं की पूर्ति होती है। अन्धी-देश-भक्ति वाले लोग अपने को और इन्सानों से बढ़-चढ़कर बताते हैं, इसलिये या तो वे अपनी क़ौम को सर्वोच्च साबित करने की कोशिश करते हैं या देवताओं, आदि से सम्बन्ध जोड़कर किसी प्रकार अपने राष्ट्रीय-गौरव को उच्च करते हैं। वह अन्य व्यक्तियों की भाँति अपनी उत्पत्ति साधारण लोगों से मानने में अपना अपमान समझते हैं। यही कारण है कि हिटलर ने आर्य जाति की श्रेष्ठता का ढोल पीटा और जापानियों ने अपने को देवताओं की संतान मान लिया।

किन्तु जापान और जर्मनी में सामाजिक विभिन्नता होने के कारण फ़ैसिस्टवादियों की जातीय श्रेष्ठता की नीति में भी अन्तर है। जर्मनी में, जहाँ की सामाजिक अवस्था अधिक उन्नत है, जन साधारण को यह कह कर नहीं बहकाया जा सकता है कि उनकी उत्पत्ति देवताओं से हुई है। हाँ, जापान में प्राचीन सूर्य देवी को जन

साधारण की उत्पत्ति का कारण बनने का महत्त्व अवश्य प्रदान किया जा सकता है। हिटलर जर्मनों की वंश-श्रेष्ठता के सिद्धान्त का प्रतिपादन करने के लिए वैज्ञानिकों की सत्यपूर्ण खोजों का कैसा उल्टा सीधा मतलब लगाता है, यह हम उसकी आत्मकथा (Mein Kampf) के कुछ उदाहरणों से समझ सकेंगे।

'आर्य जाति अल्पसंख्यक होने पर भी अन्य देशवासियों पर विजय प्राप्त कर लेती थी और, विजित देशों की नवीन परिस्थितियों से प्रभावित होकर अपने से हीन जातियों के शारीरिक परिश्रम का लाभ उठाकर, आर्य अपनी उन बौद्धिक शक्तियों का तथा संगठन शक्ति का विकास करते थे जो अधीनस्थ देशवासी कदापि न कर पाए थे। किन्तु अन्त में विजेताओं ने कुछ ऐसे कार्य किए जिनसे वे पहले अपने को बचा सके थे। उदाहरणार्थ उन्होंने आरम्भ में पराजित जातियों से अपना रक्त सम्बन्ध स्थापित नहीं किया, किन्तु पीछे आकर वे उनमें मिलने-जुलने लगे। इस प्रकार उन्होंने अपना जातीयता का अन्त कर दिया और वे उसी दोष के, जिसके कारण आदम को स्वर्ग से निकलना पड़ा था, भागी बने। इन विजेता स्वामियों के शुद्ध रक्त की झलक उनकी विजय के एक हज़ार अथवा कुछ अधिक वर्षों तक दस्युओं की त्वचाओं में दृष्टिगोचर होती है, और उन प्राचीन आर्यों द्वारा प्रसारित सभ्यता की एक झाँकी भी इन आश्रितों के आचार-व्यवहार में देखने को मिलती है। उनकी प्रतिभा की कुछ आभा इन पराजित जातियों में मौजूद है जो कि कालान्तर में पुनः असभ्य दशा को पहुँच गईं। देखने वाले को यह भ्रम हो जाता है कि वर्तमान सभ्यता का उद्गम

वास्तव में इन्हीं जातियों में निहित है, जबकि यथार्थता यह है कि उक्त स्थिति और कुछ न होकर अत्यन्त प्राचीनावस्था का केवल एक छाया चित्रण-मात्र है। यदि प्राचीन आर्य लोग अपने द्वारा पराजित हीन जातियों द्वारा अपना काम न कराते तो उन्हें अपनी सभ्यता का विकास करना लगभग उसी प्रकार असम्भव हो जाता जिस प्रकार यदि वे उन कतिपय पशुओं को पालकर उनसे घरेलू अथवा कृषि-कार्य कराना आरम्भ न करते जिनके कारण आगे चलकर वे सम्पत्तिशाली बने—आज भले ही उन्होंने यान्त्रिक उन्नति करके उन निरीह पशुओं से काम लेना क़रीब क़रीब बन्द सा कर दिया हो। हीन जातियों के व्यक्ति इस प्रकार वर्तमान सभ्यता के विकास के प्रथम यान्त्रिक साधन बने।'

उपर्युक्त उद्धरण का अर्थ, जो कि नाज़ियों की बाइबिल हिटलर की 'मेरी कहानी' में से लिया गया है, स्पष्ट है। जो भारतीय हिटलर के आर्य-जाति-सिद्धान्त को बहुत अच्छा समझते हैं उनको आँखें खोलकर अपने प्रति जर्मनों के निम्नलिखित विचार को भी पढ़ लेना चाहिए :

'जो भी सच्चे हृदय से संसार में शान्ति चाहता है उसका यह धर्म है कि विश्व-विजय करने में जर्मनजाति की यथाशक्ति अधिक से अधिक सहायता करे, क्योंकि यदि ऐसा न हुआ तो जर्मन जाति के अन्त के साथ साथ शान्तिवाद का भी अन्त हो जायगा। शान्ति और मानवता के सिद्धान्त तभी भली भाँति फूले फलेंगे जबकि संसार के सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति हीन जातियों को अधीनस्थ करके सर्वत्र अपनी विजय-पताका फहराने में समर्थ होंगे। जो भी व्यक्ति श्रेष्ठ जातीयता के सिद्धांत को नहीं मानता अथवा उसकी

अवहेलना करता है निश्चय ही वह श्रेष्ठतम जाति के उस उन्नति-मार्ग में रोड़े अटकाता है जिसपर चले बिना संसार का कल्याण होना सम्भव नहीं।'

अपने मुख्य विषय, जापानियों के जातीयता के सिद्धान्त, की ओर दृष्टिपात करने पर ज्ञात होता है कि इस सिद्धान्त के अनुसार जापानी लोग अपनी प्राचीन सूर्य देवी अमाटेरासू-आ-मि-कामी, के सीधे वंशधर हैं। इस विषय में केवल यही कहा जा सकता है कि प्रत्येक पिछड़ी हुई जाति के पौराणिक इतिहासों में ऐसी गाथाएँ भरी पड़ी हैं और इस प्रकार सभी देशों के निवासी एक न एक देवता या देवो की संतान बन सकते हैं।

वास्तव में जापानी क़ौम कई विभिन्न लोगों से मिलकर बनी है और वह कोई वर्णन करने योग्य विशेषता नहीं रखती।

ऐनू जाति का व्यक्ति, जो जापानी द्वीपसमूहों से बिलकुल लुप्त नहीं हो सका है, जापान का आदिम निवासी कहा जा सकता है, पर ऐनू के अतिरिक्त भी वहाँ एक और पुराने निवासी के चिह्न पाये जाते हैं। बाद में कोरिया से मंगोल तथा दक्षिणी द्वीपसमूहों से मलय लोगों के झुंड जापान में आकर बसे, जिनके सम्मिश्रण से आधुनिक जापानी क़ौम बनी।

जापान ने कोरिया से न केवल अपनी क़ौम का ख़ास ज़ुज़ ही प्राप्त किया है, वरन् वहाँ की सभ्यता तथा धर्म को भी अपनाया है। किन्तु इस भाग्यविडम्बना को तो देखिये कि आज जापान ने कोरिया को अपना ग़ुलाम बना लिया है और शायद उसे इसी अपराध के लिये तरह तरह की यातनायें दे रहा है कि एक समय में उसने जापानी जाति, सभ्यता तथा संस्कृति की नींव डाली थी।